भारत सरकार

विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

101 वीं रिपोर्ट

संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य :

भारतीय निगमों पर विस्तारित करने की सिफारिश

1984

प्रबन्धक भारत सरकार मुद्रणालय, कोयम्बत्तूर द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशन-
नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054 द्वारा प्रकाशित

भारत का विधि आयोग की '101 वीं' रिपोर्ट (1984 में प्रकाशित) का शुद्धिपत्र

पृष्ठ सं०	पैरा	पंक्ति सं०	के स्थान पर	पढ़ें
मुख पृष्ठ	—	5	स्वातलंथ	स्वातन्त्रय
2	1.5	5	करना होगी,	करनी होगी,
9	3.6 के नीचे का पैरा	2	की और	की ओर
11	4.8, पार्श्व शीर्ष	1-2	विसंगता-पूर्ण	विसंगततापूर्ण
15	5.5	3	शुरुआर्थ	शुरुआत
16	5.8	4	सामथर्थ	सामर्थ्य
18	5.25, पार्श्व शीर्ष	1-2	समाचार-पत्रों भिन्न संगठनसे ।	समाचार-पत्रों से भिन्न संगठन ।
23	6.5, पार्श्व शीर्ष	4	कुछ मद्दे ।	कुछ मुद्दे ।
23	पाद टिप्पण 1	1	1. उदा विधि आयोग	1. विधि आयोग का

विषय-वस्तु

	पृष्ठ
अध्याय 1—प्रारम्भिक	1
अध्याय 2—इतिहास	5
अध्याय 3—वर्तमान स्थिति	7
अध्याय 4—संविधान के संशोधन की आवश्यकता	10
अध्याय 5—इंग्लैंड, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, तथा कुछ राष्ट्रमंडलीय देशों में स्थिति	13
अध्याय 6—कार्य-पत्रक पर प्राप्त समीक्षाएं	22
अध्याय 7—संविधान के संशोधन के लिए सिफारिश	24

अध्याय 1

प्रारंभिक

1.1. भारत के विधि आयोग ने इस प्रश्न पर विचार-विमर्श करना आवश्यक समझा है कि क्या संविधान द्वारा यथा प्रत्याभूत वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य का मूल अधिकार कंपनियों, निगमों और अन्य कृत्रिम व्यक्तियों को उपलब्ध कराया जाना चाहिए, और यदि उपलब्ध कराया जाना चाहिए तो किन शर्तों के अधीन। इस विषय को विचारार्थ लिए जाने की आवश्यकता, तथा इस अन्वेषण के कुछ आयामों पर अगले पृष्ठों में प्रकाश डाला गया है। व्याप्ति।

1.2. भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) में नागरिकों को छह स्वतंत्रताएं प्रत्याभूत की गई हैं। इनमें से प्रथम, अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य है। यह अधिकार, अनुच्छेद 19(2) में वर्णित विभिन्न बातों के हित में उस पर युक्तियुक्त निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली विधि बनाने की राज्य की शक्ति के अध्यधीन है। इस अन्वेषण में हमारा संबंध उन निर्बन्धनों की व्याप्ति से नहीं है जो विधि द्वारा वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य पर लगाए जा सकते हैं। यहां हमारा आशय उस निर्बन्धन का विवेचन करना है जो स्वतः संविधान में स्पष्ट किया गया है, अर्थात् यह कि अनुच्छेद 19 के उपबंधों का लाभ केवल नागरिकों द्वारा उठाया जा सकता है। जैसा कि इस विषय पर न्यायिक निर्णयों के संक्षिप्त विवरण से, जो रिपोर्ट के पश्चात्वर्ती पैराओं में दिया गया है,[1] स्पष्ट होगा, अनुच्छेद 19 में शब्द "नागरिक" के प्रयोग का प्रभाव यह है कि निगमित निकायों को इस अनुच्छेद की व्याप्ति के बाहर छोड़ दिया गया है। इस का परिणाम यह है कि राष्ट्र के एक महत्वपूर्ण भाग को भाषण और अभिव्यक्ति के संबंध में कोई संवैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं है। संस्थाएं और संगठन अवैयक्तिक स्वरूप के होने के कारण, "नागरिकता" के लिए अर्ह नहीं हैं। इस प्रकार अनुच्छेद 19 का संरक्षण उन्हें उपलब्ध नहीं है, और जैसा कि न्यायिक अधिघोषणाओं से प्रतीत होता है, वह संरक्षण प्रकृत व्यक्तियों तक सीमित है। किसी भी दशा में, इस सम्बन्ध में जो स्थिति विद्यमान है वह अस्पष्ट है[2]। पृष्ठभूमि।

1.3. इससे, हमारी राय में गंभीर विसंगति उत्पन्न होती है। ऐसे अनेक संगठन और संस्थाएं हैं जिन्हें वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य की आवश्यकता है। इन संगठनों और संस्थाओं को अनेक स्थूल प्रवर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है। प्रथमतः, ऐसे वाणिज्यिक संगठन (उदाहरणार्थ, समाचार-पत्रों का स्वामित्व रखने वाली कंपनियां) हैं जिनका मुख्य उद्देश्य लाभ के लिए समाचारों का प्रसार और प्रकाशन करना है। द्वितीयतः, विचारों के प्रकाशन से संबद्ध संगठन (उदाहरणार्थ, पत्र-पत्रिकाओं का स्वामित्व रखने वाली कंपनियां) जिनका उद्देश्य लाभार्जन है। तृतीयतः, ऐसे संगठन हैं जो कुछ ऐसे कार्यकलापों में लगे हैं (जैसे कि फिल्मों का निर्माण और वितरण करने वाली कंपनियां) जिन में यद्यपि समाचार का प्रसार या विचारों का प्रतिपादन उन कार्यकलापों का प्रत्यक्ष उद्देश्य नहीं है, तथापि विचारों का प्रतिपादन ऐसी परिस्थितियों में किया जाता है जिन में अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाते हैं। दृश्य या श्रव्य-दृश्य माध्यम द्वारा जीवन का उसकी समस्त वास्तविकता और उसके समस्त रूपों में चित्रण इन संगठनों के कार्यकलापों में इतनी गहनता से किया जाता है कि उनके लिए अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के प्रश्न वास्तविक महत्व के होते हैं[3]। संगठनों के जिन तीन प्रवर्गों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनका उन संख्याओं का वर्गीकरण जिन्हें वाक्-स्वातंत्र्य की आवश्यकता है।

---

[1] नीचे का अध्याय 3।

[2] पैरा 3.1 से 3.5 तथा साथ ही नीचे का अध्याय 4।

[3] नीचे के पैरा 4.2 से 4.7 तक देखिए।

चयन वाणिज्यिक श्रेत्र से किया गया है। इसके अतिरिक्त, तथा चतुर्थ प्रवर्ग के रूप में अवाणिज्यिक निगमों का उल्लेख किया जा सकता है। जो या तो प्रत्यक्ष रूप से समाचारों के प्रसार या विचारों के प्रतिपादन को अंतर्ग्रस्त करने वाले कार्यकलापों में या ऐसी संक्रियाओं को सामयिक रूप से अन्तर्ग्रस्त करने वाले कार्यकलापों में लगे हैं। पंचमतः, ऐसे निगमित निकाय (उदाहरणार्थ, विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय की प्रास्थिति रखने वाली संस्थाएं) भी हैं जिनके कार्य कलापों में यदा-कदा वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के प्रश्न अन्तर्वलित रहते हैं, विशेषतः जहां कि विश्वविद्यालय अपने कार्यकलापों के भाग के रूप में सक्रियतापूर्वक व्याख्यान और सेमिनार आयोजित करते हैं या प्रकाशन निकालते हैं। इस संबंध में, यह उल्लेखनीय है कि बार काउन्सिलों को अब कानून द्वारा यह शक्ति दी गई है कि वे सेमीनार आयोजित करें और प्रकाशन निकालें[1]।

विसंगतता।

1.4. पूर्ववर्ती पैरा में संगठनों और संस्थाओं की प्रगणना केवल दृष्टान्त के रूप में की गई है। उनकी सर्वतः पूर्ण सूची नहीं बनाई जा सकती। यदि ऐसा संभव होता तो जिस स्वरूप की समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, वे कदाचित उत्पन्न ही नहीं होती। कहने का तात्पर्य यह है कि विधिक भाषा में "कृत्रिम" या "विधिक" व्यक्तियों के अनेक विभेद हैं जिन के कि कार्यकलाप उन्हें ऐसी परिस्थितियों में अन्तर्ग्रस्त कर सकते हैं जिन में वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा उनका संवैधानिक संरक्षण अत्यधिक व्यावहारिक महत्व का हो सकता है। इस प्रश्न की सविस्तार व्याख्या करने के लिए, निम्नलिखित बिन्दु महत्वपूर्ण हैं:—

(1) क्या विधि द्वारा इन संगठनों पर, जीवन का विस्तृत सर्वांग चित्रण करने वाले उनके कार्यकलापों के संबंध में, कोई निर्बन्धन लगाए जाने चाहिए, और

(2) यदि हां, तो ऐसे निर्बन्धन अधिरोपित करने में विधि को किन मर्यादाओं के अनुरूप होना चाहिए।

उपर्युक्त प्रश्न (2) के उत्तर में संविधान के अनुच्छेद 19 की व्याप्ति का विचार प्रत्यक्षतः अन्तर्ग्रस्त है।

विसंगतता।

1.5. वह विसंगति, जो संविधान के अनुच्छेद 19(1) की सीमित व्याप्ति[2] द्वारा निर्मित वर्तमान स्थिति के कारण उत्पन्न हो सकती है, एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। मान लीजिए, राज्य नाट्य-प्रदर्शनों को विनियमित करने वाली और ऐसे प्रदर्शन पर पूर्विक निर्बन्धन, जैसे यह अपेक्षा करते हुए कि किसी प्रदर्शन को सार्वजनिक रूप से अभिनीत करने के पूर्व, पुलिस अधीक्षक की पूर्व अनुज्ञा प्राप्त करना होगी, अधिरोपित करने वाली कोई विधि पारित करती है। कोई साहित्यिक सोसाइटी (भले ही उसने निगमित प्रास्थिति प्राप्त कर ली हो) या कोई सहकारी सोसाइटी (जैसे लेखकों का सहकारी संघ) वर्तमान में उस विधि की संवैधानिकता पर आक्षेप नहीं कर सकता क्योंकि ऐसी सोसाइटी "नागरिक" नहीं है। नागरिक नहीं होने के कारण, ऐसी सोसाइटी अनुच्छेद 19 के संरक्षण का दावा नहीं कर सकती। दूसरे शब्दों में, राज्य ऐसी सोसाइटियों के संबंध में भाषण और अभिव्यक्ति को नियंत्रित करने के लिए किसी भी प्रकार की विधि बना सकती है। यह विसंगति संवैधानिक स्थिति के परीक्षण को न्यायोचित ठहराने की दृष्टि से अत्यधिक गम्भीर है। व्यवहार में अभी तक यह विसंगति अंशतः इस कारण इतनी तीव्रता से महसूस नहीं की गई है क्योंकि ऐसे संगठनों और संस्थाओं के सदस्य समुचित कार्यवाहियां संस्थित कर सकते हैं। अतः संगठन के संवैधानिक अधिकार का अभाव सदैव ध्यान में नहीं आया। किन्तु यह कमी एक वास्तविक कमी है।

अनेक मामलों में, ऊपर दिए गए काल्पनिक उदाहरण में दर्शित स्वरूप के विधान के प्रयतित प्रवर्तन के कारण उनके स्वयं के स्वातन्त्र्य का अतिक्रमण हो सकता है। चूंकि

[1]धारा 6, अधिवक्ता अधिनियम (1973 में यथा संशोधित)।

[2]ऊपर का पैरा 1.2।

सदस्य स्वतः मूल अधिकारों का उपभोग करते हैं, अतः यह तथ्य कि संगठन को उसके उस रूप में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है, बहुधा ध्यान से ओझल हो जाता है। किन्तु यह स्थिति किसी भी प्रकार सन्तोषजनक नहीं मानी जा सकती। संगठनों और संस्थाओं को प्रश्नगत अधिकार से वंचित रखने के लिए कोई तर्कपूर्ण औचित्य नहीं है। जैसा कि अगले पैराओं में तथा साथ ही पश्चात्वर्ती एक अध्याय में[1] बताया गया है, उनकी प्रास्थिति और कार्यकलापों का अपना महत्व है।

संगठनों का महत्व।

1.6. व्यक्तियों और संगठनों में महत्वपूर्ण अन्तर है। व्यक्ति आते हैं और चले जाते हैं। उनके विचारों में अन्तर हो सकता है। अपनी स्वतंत्रता की प्रतिरक्षा करने और अपने अधिकारों पर दृढ़ रहने की उनकी व्यग्रता वैसी ही नहीं हो सकती जैसी कि समग्रतः किसी संगठन की होती है। उनके स्रोत, समय और शक्ति, उनकी प्रास्थिति और महत्ता, उनकी नैतिक गुरुता, और सामाजिक ख्याति संगठन की अपेक्षा बहुत निम्न स्तर की हो सकती है। अतः, किसी संगठन के सदस्यों की प्रेरणा पर किसी अधिकार की प्रवर्तनीयता, संगठन की प्रेरणा पर प्रवर्तनीयता की प्रतिस्थानी नहीं हो सकती। इन बातों के अतिरिक्त, मूलभूत स्वतंत्रताओं से संबंधित संवैधानिक उपबंध व्यवहारिक वास्तविकताओं को अधिक समय तक अनदेखा नहीं कर सकते। ऐसी उपेक्षा कालान्तर में विकृत निर्वचन, विधिक परिकल्पनाओं और इसी प्रकार की अन्य परिस्थितियों को जन्म देगी जो सुव्यक्त एवं स्पष्ट उपबंध की प्रतिस्थानी नहीं हो सकती।

ये ही वे मुख्य कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर हमने यह अन्वेषण हाथ में लिया है जिसका उद्देश्य इस प्रश्न पर विचार करना है कि क्या संविधान के अनुच्छेद 19(1) (क) को कुछ शर्तों के अधीन अप्रकृत व्यक्तियों पर विस्तारित नहीं किया जाना चाहिए।

प्रेस कमीशन रिपोर्ट।

1.7. उपर्युक्त कारणों के साथ ही, एक बात यह भी है कि द्वितीय प्रेस कमीशन ने सरकार को अग्रेषित अपनी रिपोर्ट में इस बात की आवश्यकता की ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि संविधान को विचाराधीन विषय[2] के संबंध में यथोचित रूप से संशोधित किया जाना चाहिए। वर्तमान स्थिति का विवेचन करने के पश्चात्, प्रेस कमीशन ने इस विषय पर निम्नलिखित सिफारिशें की हैं :—

> "14. संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कंपनी नागरिक नहीं है और इसलिए वह अनुच्छेद 19 के अधीन प्रगणित मूल अधिकारों का दावा नहीं कर सकती। चूंकि कंपनियों द्वारा बहुत से समाचार-पत्र प्रकाशित किए जाते हैं, और कंपनी नागरिक न होने के कारण अनुच्छेद 19 के अधीन के मूल अधिकारों की हकदार नहीं है, अतः हम यह सिफारिश करते हैं कि ऐसी समस्त भारतीय कंपनियों को, जो संसूचना प्रसार के कारबार में लगी हुई हैं और जिन के अंशधारी नागरिक हैं, अनुच्छेद 19 के सुसंगत खंडों के प्रयोजनों के लिए "नागरिक" समझा जाना चाहिए।"

ऊपर उद्धृत सिफारिश न केवल सावधानीपूर्वक विचार किए जाने योग्य है, वरन् यह भी वांछनीय[3] है कि इस विषय पर संवैधानिक संशोधन सूत्रित करते समय इसी दृष्टिकोण को और आगे बढ़ाया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में विस्तृत विवरण संबंधी जो बिन्दु उपस्थित होते हैं, उन पर हम पश्चात्वर्ती अध्याय में विचार करेंगे।

यह विषय स्वप्रेरणा से विचारार्थ लिया गया है।

1.8. हम यह कहना चाहेंगे कि इस विवादग्रस्त विषय के महत्व को और वर्तमान स्थिति के असंतोषजनक स्वरूप को देखते हुए, और विशेषतः द्वितीय प्रेस कमीशन द्वारा व्यक्त किए गए विचारों[4] को दृष्टिगत रखते हुए, हमने अपनी स्वयं की इच्छा से इस विषय पर विचार करना उपयुक्त समझा है।

---

[1]पैरा 1.4 और नीचे का अध्याय 4।

[2]सेकण्ड प्रेस कमीशन, रिपोर्ट (1981) खंड 1, पृ० 32—34 पैरा 3—14।

[3]देखिए नीचे का पैरा 4.11।

[4]ऊपर का पैरा 1.6।

यह अन्वेषण वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य तक ही सीमित है।

1.9. हम यह भी स्पष्ट करना चाहेंगे कि वर्तमान विवेचन इस प्रश्न तक ही सीमित है कि क्या अनुच्छेद 19(1)(क) द्वारा प्रदत्त अधिकार---वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य---निगमित निकायों पर विस्तारित किया जाना चाहिए। इस प्रश्न पर कि क्या अनुच्छेद 19(1) द्वारा प्रत्याभूत अन्य स्वतंत्रताएं भी इसी प्रकार विस्तारित की जानी चाहिए, इस अन्वेषण में विचार नहीं किया जा रहा है। उस संबंध में कोई सुझाव नहीं दिए गए हैं। अनुच्छेद 19 द्वारा प्रत्याभूत अन्य स्वतंत्रताओं से संबंधित सामग्री भी उतनी ठोस और महत्वपूर्ण नहीं है कि जो हमें उन स्वतंत्रताओं पर स्वप्रेरणा से विचार करने के लिये विवश करे।

आयोग द्वारा कार्य-पत्रक परिचालित किया गया है।

1.10. यह अध्याय समाप्त करने के पूर्व, यह उल्लेख किया जाना उचित होगा कि आयोग ने इस रिपोर्ट[1] की विषयवस्तु पर समीक्षा के लिए एक कार्य-पत्रक परिचालित किया था।

कार्य-पत्रक पर प्राप्त टिप्पणियों पर पश्चात्वर्ती अध्याय 1 में विचार किया जाएगा। आयोग उन सभी का आभारी है जिन्होंने कार्य-पत्रक पर अपनी समीक्षाएं भेजी हैं।

---

[1]भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य पर कार्य-पत्रक : उसे निगमों और अन्य संस्थाओं पर विस्तारित करने का प्रस्ताव।

अध्याय 2

इतिहास

अनुच्छेद 19 के प्रारूपण का इतिहास।

2.1. इस रिपोर्ट के प्रयोजनों के लिए, हमने इस प्रश्न का परीक्षण करने का प्रयत्न किया है कि भारतीय संविधान के बनाए जाने के समय, अनुच्छेद 19 को नागरिकों तक ही सीमित रखने का विनिश्चय क्यों किया गया। यह प्रतीत होता है कि मूल अधिकारों से संबंधित उपसमिति ने पहली बार दि० 25 मार्च, 1947 को अभिव्यक्ति, संगम, सम्मेलन की स्वतन्त्रता पर तथा डा० मुंशी और डा० अम्बेडकर के प्रारूपों में अन्तर्विष्ट अन्य अधिकारों पर विचार किया। डा० मुंशी[1] के प्रारूप में यह प्रस्तावित किया गया था कि प्रत्येक नागरिक को, संघ की सीमाओं के भीतर तथा संघ की विधि के अनुसार, अनेक व्यक्तिगत अधिकार प्रत्याभूत किए जाने चाहिए। इनमें अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य, अभिमत-स्वातन्त्र्य स्वतंत्र रूप से संगम बनाने और संयुक्त होने, शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन, पत्र-व्यवहार की गोपनीयता और अबाध संचरण और व्यापार के अधिकार सम्मिलित थे। इस प्रारूप के अनुसार प्रेस की स्वतंत्रता भी, संघ की विधि द्वारा अधिरोपित केवल ऐसे निर्बन्धनों के अधीन दी जानी थी जो लोक व्यवस्था और सदाचार[2] के हित में आवश्यक हों।

डा० अम्बेडकर के प्रारूप में यह प्रस्तावित किया गया था कि "लोक व्यवस्था और सदाचार[3-4] के आधारों पर के सिवाय, वाक्-स्वातन्त्र्य, प्रेस-स्वातन्त्र्य, संगम बनाने की स्वतंत्रता को और सम्मेलन की स्वतंत्रता को न्यून करने वाली कोई विधि नहीं बनाई जाएगी।"

मूल अधिकारों पर उपसमिति की रिपोर्ट।

2.2. मूल अधिकारों से संबंधित उप समिति ने, अपनी प्रारूप रिपोर्ट में, नागरिकों के पांच विनिर्दिष्ट अधिकार सूचित किए थे, अर्थात्:— (1) वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार, (2) शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का अधिकार, (3) संगम या संघ बनाने का अधिकार, (4) पत्र-व्यवहार की गोपनीयता का अधिकार, और (5) संघ में सर्वत्र संचरण का, संघ के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का, सम्पत्ति अर्जित करने का, और कोई उपजीविका, व्यापार का कारबार या वृत्ति[5] करने का अधिकार।

प्रेस-स्वातन्त्र्य को, जो डा० के०एम० मुंशी[6] द्वारा एक पृथक् अधिकार के रूप में प्रस्तावित किया गया था, संविधान में अन्ततः पृथक् अधिकार के रूप में स्थान नहीं मिला। इस प्रकार, प्रश्नगत उपबंध केवल नागरिकों तक ही सीमित रह गए।

अनुच्छेद 14 के प्रारूपण का इतिहास।

2.3. संविधान के अनुच्छेद 14 से संबंधित स्थिति (विधियों का समान संरक्षण) इस संबंध में भिन्न है। प्रत्येक नागरिक को विधि के समक्ष समानता प्रत्याभूत करने और विधियों के समान संरक्षण के सिद्धांत को सर्व प्रथम डा० मुंशी और डा० अम्बेडकर[7] द्वारा मूल अधिकार उपसमिति को प्रस्तुत किए गए प्रारूपों में सम्मिलित किया गया था।

---

[1]मुंशी का प्रारूप, अनुच्छेद V (1) और (2) सेलेक्ट डाकुमेन्ट्स II, 4 (ii) (बी), पृ०75।

[2]शिवराव, "दि फ्रेमिंग आफ कान्स्टीट्यूशन आफ इण्डिया" (1968), पृ० 211।

[3]अम्बेडकर का प्रारूप अनुच्छेद II (1) (12) और (7), सेलेक्ट डाकुमेन्ट्स, II, 4 (11) (डी), पृ० 86–87।

[4]शिवराव, दि फ्रेमिंग आफ दी कान्स्टीट्यूशन आफ इण्डिया, (1968), पृ० 211।

[5]सेलेक्ट डाकुमेन्ट्स II, 4 (3) और (4), पृ० 119-120, 130।

[6]ऊपर का पैरा 2.1 मुंशी का प्रारूप, अनुच्छेद III (1) और (10)।

[7]अम्बेडकर का प्रारूप अनुच्छेद II (1) (3) सेलेक्ट डाकुमेन्ट्स II, 4 (ii), पृ०74-5, 86।

इन प्रारूपों पर दो दिन (मार्च 24 और 29, 1947) तक विचार करने के पश्चात् उपसमिति ने डा० मुंशी के प्रारूप को निम्नानुसार उपान्तरित रूप में अंगीकार कर लिया:—

> "संघ के भीतर के सभी व्यक्ति विधि के समक्ष समान होंगे। संघ के राज्यक्षेत्रों के भीतर किसी भी व्यक्ति को विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जाएगा। धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या लिंग के आधार पर किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध कोई भेद भाव नहीं होगा।"

उपसमिति का विनिश्चय यह था कि भारत के समस्त व्यक्ति (और न केवल नागरिक), विधि के समक्ष समान होने चाहिए।[1-2]

---

[1]कार्यवृत्त, मार्च 24, 1947 सेलेक्ट डाक्युमेन्ट्स II, 4 (iii) पृ० 116—8।

[2]शिवराव, दि फ्रेमिंग ऑफ इण्डियन कांस्टीट्यूशन (1961), पृ० 179।

अध्याय 3

वर्तमान स्थिति

संविधान के अनुच्छेद 19 के अधीन वर्तमान स्थिति ।

3.1. भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 की विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों को प्रयुक्ति के संबंध में वर्तमान स्थिति को प्रतिपादनाओं के रूप में निम्नानुसार दर्शाया जा सकता है :—

(1) संविधान का अनुच्छेद 19 नागरिकों तक ही सीमित होने के कारण, विदेशी उसके अधीन[1] किसी अधिकार का दावा नहीं कर सकते।

(2) वर्तमान में स्थिति यह है कि कोई निगम नागरिकता का दावा नहीं कर सकता[2], और इसलिए वह अनुच्छेद 19 के अधीन किसी अधिकार[3] का दावा नहीं कर सकता।

(3) भले ही निगम ऐसी कंपनी हो जिसके अंशधारक भारत[4] के नागरिक हों, फिर भी स्थिति यही है। (अभी हाल के एक निर्णय में इस स्थिति को अस्पष्ट[5] बताया गया है)।

(4) किन्तु ऐसी कंपनी के अंशधारक उस दशा में जबकि उनके स्वयं के अधिकारों का अतिलंघन होता है, किसी विधि की संवैधानिकता पर इस आधार पर आक्षेप कर सकते हैं कि अनुच्छेद 19 का अतिलंघन हुआ है[6], और ऐसी कार्यवाहियों में कंपनी को पक्षकार के रूप में संयुक्त किया जा सकता है।[7]

निर्णयज विधि का कालानुक्रमिक सर्वेक्षण—1965 तक के मामले ।

3.2. कालक्रमानुसार, इस बिन्दु पर जो पहला महत्वपूर्ण मामला देखने में आता है, वह 1957 का है। उस मामले में[8] उच्चतम न्यायालय ने उस कठिनाई की ओर संकेत किया था कि जो इस बात से उत्पन्न हो सकती है कि निगम "नागरिक" नहीं हैं। 1959 में, उच्चतम न्यायालय ने ये विचार व्यक्त किए थे कि समाचार-पत्र चलाने वाला कोई अनागरिक वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य का हकदार नहीं है और इसलिए वह प्रेस-स्वातन्त्र्य की प्रसुविधा का दावा नहीं कर सकता[9]।

---

1. अनवर वि० स्टेट आफ जे० एण्ड के० 1971 एस०सी० 337, 338।
2. (क) बैरियम कैमिकल वि० कंपनी ला बोर्ड, ए०आई०आर० 1967 एस० सी० 295।
   (ख) टाटा इंजीनियरिंग कंपनी वि० स्टेट आफ बिहार, ए०आई०आर० 1965 एस०सी० 40, 48 : (1964) 6 एस०सी०आर० 85।
   (ग) एस०टी०सी० वि सी०टी०ओ० (1964) 4 एस० सी० आर० 99, ए०आई०आर० 1963; एस०सी० 1811।
3. अमृतसर म्युनिसिपालीटी वि० स्टेट आफ पंजाब, ए०आई०आर० 1965 एस०सी० 1100, 1106।
4. (क) बेरियम कैमिकल्स वि० कंपनी ला बोर्ड, ए०आई०आर० 1967 एस०सी० 295, 305।
   (ख) टाटा इंजीनियरिंग कं० वि० स्टेट आफ बिहार, ए०आई०आर० 1965 एस०सी० 40, 48 : (1964) 6 एस०सी०आर० 85।
5. नीचे का पैरा 3.6।
6. आर०सी०कपूर वि० यूनियन आफ इंडिया, (1970) 3 एस०सी०आर० 530, ए०आई०आर० 1970, एस०सी० 564।
7. बैनेट कोलमेन वि० यूनियन आफ इंडिया, ए०आई०आर० 1973, एस०सी० 106, 1973(2) एस०सी०आर० 757।
8. आर०एम०डी० चमरबागवाला वि० यूनियन आफ इंडिया, (1957) एस०सी०आर० 930।
9. एम०एस०एम० शर्मा वि० श्री कृष्ण सिन्हा (1959) एस०सी०आर० 806।

तत्पश्चात्, वर्ष 1964 में उच्चतम न्यायालय के दो विनिश्चय रिपोर्ट किए गए हैं जो इस विषय में सुसंगत हैं। पहला, नौ न्यायाधीशों की खंडपीठ ने यह व्यवस्था दी जिसके द्वारा (बहुमत से) यह ठहराया गया कि नागरिकता अधिनियम के उपबंध इस प्रश्न पर निश्चायक थे कि कोई निगम या कोई कंपनी भारत का नागरिक नहीं हो सकती[1]। 1964 के दूसरे मामले में, उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की खंडपीठ ने सर्वसम्मति से यह ठहराया कि प्रश्नगत अधिकार अनुच्छेद 19 द्वारा केवल नागरिकों को ही उस रूप में प्रत्याभूत किए गए हैं, और यह कि कोई संगम (जैसे कोई कंपनी) अनुच्छेद 19 द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों का केवल इस तथ्य के आधार पर दावा नहीं कर सकते कि वह नागरिकों का समुच्चय था।[2]

1970 का विनिश्चय।

3.3. वर्ष 1970 में, उच्चतम न्यायालय[3] ने यह ठहराया कि यदि राज्य के कार्य से कंपनी के अधिकारों का ह्रास होता है तो उस दशा में व्यष्टिक अंशधारक के अधिकारों को राज्य के कार्य से हुए ह्रास के लिए, अनुतोष मंजूर करने की न्यायालय की अधिकारिता से इंकार नहीं किया जा सकता। यह अवधारित करने की कसौटी कि क्या अंशधारक के अधिकारों का ह्रास हुआ है, मात्र प्ररूपी नहीं है; यह आवश्यक रूप से गुणवाचक है; यदि राज्य के कार्य से अंशधारकों के अधिकारों का तथा साथ ही कंपनी के अधिकारों का ह्रास होता है, तो न्यायालय, उस कार्य के मात्र तकनीकी प्रवर्तन पर ध्यान न देते हुए, अनुतोष मंजूर करने की अधिकारिता से स्वयं को वंचित नहीं करेगा।

तथापि, यह बताना प्रसंज्ञेय होगा कि उपर्युक्त विनिश्चय में शाह, न्या० ने निश्चित रूप से यह कहा था कि 1964 की उच्चतम न्यायालय की व्यवस्था[4] विवादग्रस्त प्रश्न से सुसंगत नहीं थी। अर्जीकार ने अपने स्वयं के अधिकारों के अतिलंघन को चुनौती दी थी, न कि उस बैंक के (जिसका कि वह अंशधारक और निदेशक था और जिसके पास उसके चालू और सावधि खाते थे) अधिकारों के अतिलंघन को।

1973 का विनिश्चय।

3.4. 1973, में उच्चतम न्यायालय की खण्डपीठ के बहुसंख्य न्यायाधीशों ने यह ठहराया[5] कि यद्यपि कंपनी नागरिक नहीं है, तथापि नागरिक अंशधारक वाक्-स्वातन्त्र्य के अपने अधिकार को प्रवर्तित करा सकते हैं क्योंकि कंपनी उनके विचारों को व्यक्त करने का माध्यम मात्र है।

तात्विक उक्तियां इस प्रकार हैं:—

"अनुच्छेद 19(2) (क) के संबंध में अंशधारकों के अधिकार संरक्षित हैं और वे उन समाचार-पत्रों द्वारा प्रकट होते हैं जो अंशधारकों द्वारा निगम के माध्यम से स्वामित्व में रखे जाते हैं और नियंत्रित किए जाते हैं। इस मामले में, सम्पादकों, निदेशकों तथा अंशधारकों के व्यष्टिक वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के समस्त अधिकारों का प्रयोग उन समाचार-पत्रों के माध्यम से किया जाता है जिनके माध्यम से वे बोलते हैं। प्रेस जनता तक समाचार-पत्रों के माध्यम से पहुंचता है। अंशधारक अपने सम्पादकों के माध्यम से बोलते हैं। यह तथ्य कि कंपनियां अर्जीदार हैं, इस न्यायालय को अंशधारकों, सम्पादकों, मुद्रकों को, जिन्होंने अपने अधिकारों पर पड़ने वाले विधि के प्रभाव और उनके अधिकारों

---

1. एस०टी०सी० वि० कमर्शियल टैक्स आफिसर एस०सी०आर० 806 (1964) 4 एस०सी०आर० 99।
2. टाटा इंजीनियरिंग एण्ड लोकोमोटिव कं० लि० वि० स्टेट आफ बिहार (1964) 6 एस०सी० आर० 85, ए०आई०आर० 1965 एस०सी० 40, 48।
3. आर०सी०कपूर वि० यूनियन आफ इंडिया (1970) 3 एस०सी०आर० 530।
4. ऊपर का पैरा 3.2।
5. बैनेट कोलमेन वि० यूनियन आफ इंडिया (1973) 2 एस०सी०आर० 57, ए०आई०आर० 1973 एस०सी० 106।

पर पड़ने वाले कार्यवाही के प्रभावों के कारण अपने मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए प्रार्थना की है, अनुतोष प्रदान करने से इस न्यायालय को निवारित नहीं करता। अंशधारकों—अर्जीदारों का सुने जाने का अधिकार, बैंक नेशनलाइजेशन केस में इस न्यायालय की व्यवस्था के पश्चात्, आक्षेप से परे है।"

1973 के मामले की आलोचना।

3.5. तथापि, (बैंक नेशनलाइजेशन केस में) उच्चतम न्यायालय के निर्णय के ऊपर उद्धृत किए गए अंश के अंतिम भाग के संबंध में, हम यह बताना चाहेंगे कि वह निर्णय सदस्यों के प्रति कंपनियों के सदस्यों के रूप में किए गए अन्याय से संबंधित था। वह इस प्रश्न से संबंधित नहीं था कि इस तथ्य से कि सदस्य समाचार-पत्र संगठन के माध्यम से कार्य कर रहे थे, संगठन की स्थिति में कितना अंतर पड़ा। हम यह विचार इस तथ्य पर बल देने के लिए प्रकट कर रहे हैं कि इस विवाद विषय से संबंधित स्थिति, विभिन्न न्यायिक अधिघोषणाओं को, जिन में से महत्वपूर्ण अधिघोषणा को ऊपर संक्षेप में वर्णित किया गया है, दृष्टिगत रखते हुए, उतनी निश्चित नहीं रही है जितनी कि वह पहले थी।[1]

1963 का उच्चतम न्यायालय का निर्णय।

3.6. इस प्रक्रम पर, हाल ही में हुए उच्चतम न्यायालय के निर्णय का उल्लेख करना उचित होगा जो इस प्रश्न से संबंधित है कि अनुच्छेद 19 निगमों को किस सीमा तक लागू होता है। कंपनियों द्वारा स्वीकार किए जाने वाले निक्षेपों को विनियमित करने वाले एक नियम को उपर्युक्त मामले में चुनौती दी गई थी। उपर्युक्त नियम के प्रति किया गया आक्षेप मुख्यतः संविधान के अनुच्छेद 19(1)(छ) के अभिकथित अतिक्रमण पर आधारित था और इस मामले में रिट याचिका कंपनी द्वारा फाइल की गई थी। अटर्नी जनरल ने इस अर्जी की सन्धारणीयता पर आक्षेप किया। उनका संकथन था कि कोई निगमित निकाय, जो नागरिक नहीं है, अनुच्छेद 19(1)(छ) के भंग की शिकायत नहीं कर सकता, और यह कि कंपनी के अंशधारक या निदेशक को सह-अर्जीदार के रूप में संयोजित करने से स्थिति में सुधार नहीं हुआ है। अटर्नी जनरल की आपत्ति स्वीकार नहीं की गई। न्या० देसाई ने, अनुच्छेद 19 के संदर्भ में निगमों की स्थिति संबंधी विषय पर निर्णयज विधि का पुनर्विलोकन करने के पश्चात्, और इस टिप्पणि के साथ कि विधि "अस्पष्ट स्थिति" में है, निम्नलिखित विचार व्यक्त किए :

> "इस प्रकार, सिवाय इसके कि विधि अस्पष्ट स्थिति में है, प्रवृत्ति यह मान्य करने की और उन्मुख है कि अनुच्छेद 19 द्वारा प्रत्याभूत मूल स्वतन्त्रताओं के विषय में अंशधारकों के अधिकार और उन कंपनियों के अधिकार जो अंशधारकों ने बनाई हैं, समविस्तीर्ण हैं और मूल स्वतंत्रता से किसी एक को वंचित करने का तात्पर्य यह होगा कि दूसरा भी उससे वंचित हो जाएगा। यह समय है जब कि यह संविवाद समाप्त हो जाना चाहिए, परन्तु विधि की जो वर्तमान स्थिति है, उसमें हमारी राय यह है कि अर्जियों को **देहरी पर से ही बाहर नहीं फेंक दिया जाना चाहिए**। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के कुछ अतिरिक्त कारण भी हैं और वे ये हैं कि व्यापार या कारबार करने के मूल अधिकार से वंचित किए जाने की शिकायत के अलावा, विवादग्रस्त ऐसे अनेक मुद्दे उठाए गए थे जिनका परीक्षण उच्च न्यायालय को अनुच्छेद 226 के अधीन की अर्जी में करना चाहिए था। और अनुच्छेद 14 द्वारा प्रत्याभूत "विधि के समक्ष समानता से वंचित किए जाने की भी शिकायत की गई है। तदनुसार हम प्रारंभिक आपत्ति को नामंजूर करते हैं और संकथनों की परीक्षा गुणागुण के आधार पर करने के लिए अग्रसर होते हैं।"

---

1. देखिए, **दिल्ली क्लाथ मिल वि० यूनियन आफ इंडिया**, ए०आई०आर० 1983 एस०सी० 973 (अक्तूबर)।

1 दिल्ली क्लाथ मिल वि० यूनियन आफ इंडिया, ए०आई०आर० 1983 एस०सी० 937,943, पैरा 12 (अक्टूबर)

अध्याय 4

संविधान के संशोधन की आवश्यकता

संशोधन की आवश्यकता ।

4.1. यह बतलाने के लिए विशद व्याख्या की आवश्यकता नहीं है कि यदि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य के अधिकार का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाना है, तो वह निगमों, संस्थाओं और अन्य सत्ताओं को, जो प्रकृत व्यक्ति नहीं हैं, उपलब्ध होना चाहिए। इस स्वातंत्र्य को प्रकृत व्यक्तियों तक सीमित करने वाली वर्तमान स्थिति का परिणाम यह है कि ऐसी बहुत सी सत्तायें, जिनके माध्यम से प्रकृत व्यक्ति कार्य करते हैं, अपवर्जित हो जाती हैं। इन सत्ताओं को (जैसा कि हम अगले कुछ पैराओं में बताएंगे) वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के संवैधानिक संरक्षण की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि प्रकृत व्यक्तियों को। इसे न मानना, वास्तविकताओं की उपेक्षा करना है।

व्यष्टियों का जीवन जैसा कि वह संगठनों के माध्यम से जिया जाता है ।

4.2. आधुनिक समय में, विचारों का व्यक्तिकरण, विचारों का आदान-प्रदान और समाचारों का वितरण और प्रसारण प्रायः व्यष्टियों के निकायों या संगमों के रूप में संगठित किए जाने वाले अभिकरणों द्वारा होता है, प्रत्यक्षतः व्यष्टियों द्वारा नहीं। यदि इन संगमों और सत्ताओं को आवश्यक संवैधानिक संरक्षण से बाहर छोड़ दिया जाता है तो परोक्षतः उसका परिणाम यह होगा कि व्यष्टि भी उस संरक्षण से वंचित हो जाएंगे, क्योंकि स्वतः वे कार्यकलाप, जिनके बारे में संवैधानिक संरक्षण की आवश्यकता है, प्रायः संगठनों और सत्ताओं के माध्यम से किए जाते हैं। आधुनिक समय में, व्यष्टि के जीवन का एक भाग ऐसे संगठनों के माध्यम से जिया जाता है और उसके जीवन के इस भाग को उतनी ही मान्यता मिलनी चाहिए जितनी कि पूर्णतः व्यष्टिगत स्तर पर जिए गए जीवन को। इस अर्थ में भी, वर्तमान स्थिति का परोक्ष परिणाम यह है कि स्वयं व्यष्टि भी संरक्षण से वंचित हो जाते हैं।

संगठन की वास्तविकता ।

4.3. द्वितीयतः यह स्मरण रखा जाना चाहिए कि संगठनों और सत्ताओं का स्वतः का वास्तविक अस्तित्व होता है। उनका व्यक्तित्व विधि की दृष्टि से कृत्रिम हो सकता है। किन्तु यह तथ्य कि क्रियाकलाप किसी सत्ता के माध्यम से संगठित रीति में किए जाते हैं, निश्चित ही प्रश्नगत क्रियाकलाप में नये आयाम जोड़ते हैं।

सुभिन्न सत्ता के रूप में कंपनी-विधिक पक्ष ।

4.4. इस संदर्भ में, हम सत्ता के रूप में कंपनी के सुभिन्न महत्व पर बल देना चाहेंगे। विधिक पक्ष को लीजिए। यह सुमान्य है कि कंपनी अंशधारकों से पृथक् सत्ता है, और कंपनी के अधिकार अंशधारकों के अधिकारों से भिन्न हैं। कंपनी द्वारा केवल वे ही अधिकार प्रवर्तित कराए जा सकते हैं[1] जो कि उसके अपने हैं। वास्तव में, निगमों की विधि का सम्पूर्ण उद्देश्य विधिक सत्ता को अस्तित्व में लाना है और स्वतः समूह को जीवन्त बनाना है।

निगमों का सामाजिक स्वरूप ।

4.5. इसके अतिरिक्त, निगम की सामाजिक वास्तविकता भी है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने बहुत समय पूर्व, निम्नानुसार विचार व्यक्त किए थे[2]—

> "हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि किसी निगम का, जो समुदाय के लिए अत्यावश्यक वस्तुओं के उत्पादन में लगा हुआ है, अपना सामाजिक स्वरूप है और उसे मुख्यतः या केवल उन लोगों से संबंधित नहीं समझा जाना चाहिए जो उसमें अपना धन विनिहित करते हैं।"

---

1. सालमन वि० सालमन और कंपनी (1897) ए०सी० 22 (एच०एल०)।
2. चरन्जीतलाल वि० यूनियन आफ इंडिया ए०आई०आर० 1931, एस०सी० 51, 59।

इन्टरनेशनल सेमीनार आन करेण्ट प्राब्लम्स आफ कारपोरेट ला, मैनजमेण्ट एंड प्रैक्टिस (जो नई दिल्ली में हुआ था) में भी यही विचार व्यक्त किए गए थे। उसमें ये विचार व्यक्त किए गए थे कि उद्यम नागरिक है और नागरिक के समान उसे उस समुदाय के, जिसका कि वह सदस्य है, संबंध में उसके कार्यों तथा उसके आर्थिक-कार्य सम्पादन[1] से जाना जाता है।

4.6. यह उल्लेख भी किया जा सकता है कि जनता के लिए, निगमों की छवि उसके सदस्यों से भिन्न है। जनता में निगमों की सदस्यों से भिन्न छवि।

4.7. जैसा कि बेलिजियम के प्रोफेसर डी० वूल ने कहा[2] है, "कम्पनी की हैसियत त्रिगुणात्मक है—आर्थिक, मानवीय और लोकलक्षी—जिनमें से प्रत्येक का अपनी आन्तरिक तर्क संगति है।" त्रिगुणात्मक हैसियत।

4.8. इस विषय के समस्त पहलुओं पर विचार करने पर, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के मूल अधिकारों को प्रकृत व्यक्तियों तक सीमित करने (जैसी स्थिति वर्तमान में है) से गंभीर विसंगतियां उत्पन्न होती हैं। उसका परिणाम यह होता है कि ऐसी अनेक सत्ताएं अपवर्जित हो जाती हैं जिन्हें प्रश्नगत संरक्षण की उतनी ही आवश्यकता है जितनी कि प्रकृत व्यक्तियों को। जैसा कि हमने बताने का प्रयत्न किया है, ऐसे निकायों और संगमों ने अपनी स्वयं की भूमिका प्राप्त कर ली है और उन्हें अनुच्छेद 19(1)(क) के संरक्षण से वंचित करने का तात्पर्य यह होगा कि देश की मानवता का एक ऐसा विशाल भाग वंचित हो जाएगा जिसके, आत्माभिव्यक्ति के लिए संवैधानिक रूप से अनुकूल वातावरण के दावे को नकारा नहीं जा सकता। वर्तमान स्थिति विसंगतिपूर्ण है।

4.9. इन कारणों के अतिरिक्त, वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य का मूल उद्देश्य है। ऐसा स्वातन्त्र्य सत्यान्वेषण के लिए दिया गया है। सत्य का स्वतः प्रकटन केवल तभी हो सकता है जब विचारों की अभिव्यक्ति का स्वातन्त्र्य हो। सत्य के कठोर अन्वेषण के बिना, हृदय और मस्तिष्क की महत्वपूर्ण बातों से हम अनभिज्ञ रह जाएंगे। वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य को संरक्षित करने का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है सोसाइटी के सदस्यों द्वारा मानसिक स्तर पर जिए जाने वाले जीवन को पूरी अभिव्यक्ति मिले। जब इस विषय पर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाता है तो "प्रकृत" और "कृत्रिम" व्यक्तियों के बीच विभेद करने की आवश्यकता बहुत क्षीण हो जाती है और सभी सत्ताओं को संरक्षण देने की आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि मानसिक जीवन केवलमात्र व्यष्टिक स्तर पर नहीं जिया जाता। वह उतने ही अंशों में उन सत्ताओं के माध्यम से जिया जाता है जो सामाजिक क्रियाकलापों का संचालन करती हैं। अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का महत्व।

4.10. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य को सच्चे अर्थों में क्रियान्वित करना है और यदि संविधान को समाज की आवश्यकताओं की, उसकी संरचना और कार्यकरण की, उसकी विशिष्ट प्रकृति और महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करना है तो वर्तमान स्थिति का निराकरण किया जाना चाहिए और शीघ्र ही किया जाना चाहिए। हम इस संबंध में अपनी सिफारिशें सुस्पष्ट शब्दों में पश्चात्वर्ती अध्याय में देंगे।[3] वर्तमान स्थिति के निराकरण की आवश्यकता।

4.11. अपनी स्पष्ट सिफारिशें करने के पूर्व, यहां हम यह बताना चाहेंगे कि द्वितीय प्रेस कमीशन ने[4] अभी हाल ही में सरकार को अग्रेषित अपनी रिपोर्ट में इस आशय की द्वितीय प्रेस कमीशन की रिपोर्ट।

---

1. देखिए—**नेशनल टैक्सटाइल वर्कर्स यूनियन** वि० **पी०आर० रामकृष्णन** ए०आई०आर० 1983, एस०सी० 75, 82 पैरा 5 (जन० फर० 1983)।
2. **प्रोफेसर डी० वूल, न्या० दैसाई द्वारा पंचमहल स्टील लिमि० वि० युनिवर्सल स्टील ट्रेडर्स,** (1976) 46 कंपनी कैसेज, 712, 719 (गुज०) में उद्धृत।
3. नीचे का अध्याय 7।
4. ऊपर का पैरा 1.6।

विनिर्दिष्ट सिफारिश की है कि वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के प्रयोजन के लिए, समाचार प्रसारण के कारबार में लगी ऐसी समस्त भारतीय कंपनियों को, जिनके अंशधारक (भारतीय) नागरिक हैं, भारत का नागरिक समझा जाना चाहिए। स्वाभाविक रूप से प्रेस कमीशन ने इस विषय पर कोई प्रारूप प्रस्तावित नहीं किया है और विवरणात्मक विषयों पर चर्चा नहीं की है। इसके अतिरिक्त, उसका प्रत्यक्ष संबंध उन निगमों से नहीं था जो समाचार के कारबार से संबद्ध नहीं थे। उसका मुख्य उद्देश्य अनुच्छेद 19(1)(क) की कमी की ओर, जहां तक कि वह उपबंध प्रकृत व्यक्तियों तक सीमित है, ध्यान आकृष्ट करना था। प्रेस कमीशन ने यह बतलाया कि इस अनुच्छेद में प्रयुक्त भाषा के आधार पर, कृत्रिम व्यक्ति, जैसे कंपनियां, अनुच्छेद 19(1)(क) के संरक्षण से बाहर छोड़ दिए गए हैं।' इस विषय पर उच्चतम न्यायालय के निर्णयों का परीक्षण करने पर, कमीशन ने वर्तमान स्थिति को संतोषजनक नहीं माना, क्योंकि ऐसा प्रतीत होता है उच्चतम न्यायालय ने इस विषय को अनिश्चित बने रहने दिया है। जैसा कि हमने ऊपर बताया है[1], प्रेस कमीशन द्वारा सुझाए गए दृष्टिकोण को न केवल मान लिया जाना चाहिए वरन् कोई संशोधन सूचित करते समय उस दृष्टिकोण को यह संरक्षण समस्त कंपनियों पर, जब तक कि उन कंपनियों का स्वरूप भारतीय बना रहता है, विस्तारित करके, और आगे ले जाना चाहिए। इस पहलू पर हम बाद में पुनः विचार करेंगे।[2]

---

1. ऊपर का पैरा 1.6।
2. देखिए नीचे के पैरा 6.6 से 7.3 तक।

अध्याय 5

इंग्लैंड, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा तथा कुछ राष्ट्रमंडलीय देशों में स्थिति

प्रारंभिक ।

5.1. कुछ अन्य चुने हुए देशों में इस विषय के संबंध में जो स्थिति विद्यमान है उसका अध्ययन करना प्रासंगिक होगा। वास्तव में, तुलनात्मक सर्वेक्षण करते समय, प्रारंभ में ही दो मुख्य पहलुओं की विशेष चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है। प्रथमतः, अनेक देशों के संविधानों में (चाहे वे लिखित हों या अलिखित) मूल अधिकारों की प्रकल्पना नहीं है और इसलिए उन देशों के संबंध में वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा अन्य स्वतंत्रताओं संबंधी विषयों का अध्ययन साधारण विधि के नियमों के विवेचन के रूप में किया जाना चाहिए।

द्वितीयतः, कुछ विदेशों में साधारण अधिकारों के संबंध में भी संहिताकृत विधि नहीं है। अतः उन देशों के संबंध में किसी विशिष्ट स्वतन्त्रता के यथावत् विस्तार और व्याप्ति, जैसी कि वह साधारण नियमों द्वारा स्वीकार की गई है, उस विषय से सुसंगत न्यायिक विनिश्चयों, यदि कोई हों, के सार से ही ज्ञात की जा सकती है।

वर्तमान अध्ययन के लिए यह पहलू भी महत्वपूर्ण है क्योंकि यह तात्विक है कि निर्णयज विधि से व्युत्पन्न विधिक स्थिति का विवरण इतना यथावत नहीं हो सकता जितना किसी कानून के पाठ पर आधारित विवरण। सुसंगत नियमों का कोई प्ररूपी और अधिकृत सूत्रीकरण न होने से, अभिव्यक्ति "नागरिक" या अभिव्यक्ति "व्यक्ति" (या इसी प्रकार की अन्य कानूनी अभिव्यक्तियों) के अभिप्राय से संबंधित प्रश्न पर विचार करना उस स्थिति में संभव नहीं है जहां विधि संहिताकृत नहीं है।

इंग्लैंड में स्थिति ।

5.2. ये दोनों प्रस्तावनात्मक उक्तियां इंग्लैंड को लागू होती हैं, जहां मूल अधिकारों की अभी तक भी कोई लिखित प्रत्याभूति नहीं है और न ही अभिव्यक्ति—स्वातन्त्र्य के संबंध में साधारण नियम के रूप में[1] कोई संहिताकृत विधि ही है। अतः, इस प्रकार प्रश्न पर कि क्या कोई निगम (या कोई अन्य सत्ता) वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य का दावा कर सकता है, आंग्ल विधि के संदर्भ में केवल साधारण विधि के नियमों की व्यवस्था के रूप में विचार किया जा सकता है और वह भी प्राथमिक रूप से न्यायिक निर्णयों के अध्ययन द्वारा। संवैधानिक विधि पर (या ला आफ टार्ट्स पर) आंग्ल पुस्तकों में उस सूक्ष्म बिन्दु पर, जिससे इस समय हमारा संबंध है, अर्थात् क्या कोई निगम (या अन्य सत्ता) प्रकृत व्यक्ति के समान वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य का दावा कर सकता है, अधिक विशज्ञता से कुछ भी नहीं लिखा गया है। तथापि, इस तथ्य से कि इंग्लैंड में अभिकथित रूप से किसी क्षोभकारी प्रकाशन द्वारा गठित किसी अपराध (जैसे अपमान लेख, ईश्वर निन्दा) के लिए या किसी दुष्कृति के लिए निगम के विरुद्ध यदा-कदा ही कोई कार्यवाही की गई है और कार्यवाही किसी विशेषाधिकार को मान्यता देने वाले साधारण विधि के किसी नियम के कारण असफल रही है, कोई यह अनुमान निकाल सकता है कि इंग्लैंड में निगम को वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य का वही अधिकार है जो कि प्रकृत व्यक्ति को होता है।

सम्भवतः, इस कथन का विशदीकरण करना उपयोगी होगा। कारणों की श्रृंखला को इस प्रकार अभिव्यक्त किया जा सकता है। इंग्लैंड में, किसी व्यक्ति को, जहां तक कि वह

1. सामान्यतः देखिए मारगेरेट डेमेरिक्स डेलीनेशन आफ राइट टू फ्रीडम आफ एक्सप्रेशन (विन्टर 1980) पब्लिक ला, 359।
2. देखिए नीचे का पैरा 5.3।
3. हेलसबरी, 54 वां संस्करण, खंड 8 कान्स्टीट्यूशनल ला, पृ० 552–555।

विशिष्ट प्रकार के किसी भाषण या लेख को दंडित करने वाले या अनुयोज्य बनाने वाले किसी विनिर्दिष्ट नियम का भंग नहीं करता है, यह हक है कि वह जैसा चाहे बोले या लिखे।

आंग्ल संवैधानिक विधि का सामान्य सिद्धान्त यह है कि प्रजा प्रत्येक ऐसी बात कर सकती है जो विधि के नियम[1] द्वारा विनिर्दिष्टतः अवैध न हो। यह बात अभिव्यक्ति के क्षेत्र में वैसे ही लागू होती है जैसे कि वह अन्य क्षेत्रों में लागू होती है।[2]

यदि कोई विशिष्ट भाषण या लेख ऐसे विनिर्दिष्ट प्रतिषेधात्मक नियम के अन्तर्गत नहीं आता तो (वक्ता या लेखक के विरुद्ध) उस भाषण या लेख पर आधारित कोई अभियोजन या सिविल कार्यवाहियां असफल हो जाएंगी। भूतकाल में निगमों के विरुद्ध ऐसे अभियोजन या कार्यवाहियां वास्तव में असफल हो गई हैं क्योंकि अभियोजक या वादी यह साबित नहीं कर सका कि प्रश्नगत भाषण या लेख प्रतिषेधात्मक नियम की चहार-दीवारी में आता था। चूंकि इन मामलों में प्रतिवादी निगम था, अतः यह परिणाम केवल उस दशा में ही निकाला जा सकता था जबकि विधि इस बात को मान्यता देती हो कि किसी निगम को प्रकृत व्यक्ति के समान ही कोई ऐसी बात कहने या लिखने की स्वतंत्रता है जो विधि के प्रतिषेधात्मक नियम का अतिक्रमण न करती हो। इस तर्क-श्रंखला द्वारा, कोई यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि इस क्षेत्र में निगम को वे ही अधिकार हैं जो एक प्रकृत व्यक्ति को होते हैं।

उदाहरणात्मक मामले।

5.3. इस संदर्भ में, हाउस आफ लार्डस[3] द्वारा विनिश्चित किए गए एक प्रसिद्ध मामले का उल्लेख करना विशिष्टतया सुसंगत है जो ईश निन्दात्मक-अपमान लेख विषय पर अग्रणी मामला है। यहां हमारा संबंध उस मामले में ईश्वर निन्दा की यथावत् व्याप्ति के संबंध में चर्चित विधिक प्रतिपादनाओं के सूक्ष्म विवरण से नहीं है। यहां जो बात सुसंगत है वह यह है कि उस मामले में प्रतिवादी गारन्टी द्वारा परिसीमित एक कंपनी थी।

इस मामले में प्रतिवादी-निगम इच्छापत्र के अधीन वसीयतदार था। वादी ने वसीयत की विधिमान्यता पर इस आधार पर आक्षेप किया कि वे उद्देश्य जिनके लिए प्रतिवादी की स्थापना की गई थी, अवैध थे। प्रतिवादी कंपनी का मुख्य उद्देश्य (जैसा कि उसके संगम ज्ञापन में कथित था) धर्म निरपेक्षता का प्रचार करना था। हाउस आफ लार्डस द्वारा जिस विनिर्दिष्ट प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की गई और जिसका विद्वतापूर्वक परीक्षण किया गया, वह यह था कि क्या क्रिश्चियानिटी का प्रत्याख्यान स्वयं में ईश्वर-निन्दा था। हाउस आफ लार्ड्स ने यह ठहराया कि जब तक कि उपदेशों के साथ कोई घृणोत्पादक, अशिष्ट या अश्लील बात न की गई हो, वह ईश्वर निन्दा नहीं थी। वास्तविक विवेचन विस्तृत रूप से किया गया है किन्तु यहां उसका केवल सारांश दिया गया है।

यह ठहराया गया कि क्रिश्चियानिटी अंग्रेजी कामन ला का भाग नहीं थी। वे कार्यवाहियां इस कारण असफल हो गई कि वादी यह सिद्ध नहीं कर सका कि प्रतिवादी-निगम के उद्देश्य विधि की दृष्टि से ईश्वर निन्दात्मक थे। तदनुसार, आवेदित अनुतोष नहीं दिया गया, और प्रतिवादी-निगम के उद्देश्यों की वैधता को मान्य किया गया। यह निष्कर्ष केवल इस धारण के आधार पर निकाला जा सकता था यदि कोई विशिष्ट उपदेश विधि के किसी विनिर्दिष्ट नियम द्वारा प्रतिषिद्ध नहीं तो निगम साधारण विधि के अधीन उपलब्ध सामान्य स्वतंत्रता के आधार पर उसमें संलग्न हो सकता है। दूसरे शब्दों में, हाउस आफ लार्डस द्वारा इस सिद्धांत को विवक्षित रूप से मान्यता दी गई कि निगम कोई भी ऐसा कथन कर सकता है या प्रकाशित कर सकता है जो विधि के किसी विनिर्दिष्ट प्रतिषेधात्मक नियम का अतिक्रमण न करता हो।

---

1. देखिए हेल्सबरी, चौथा संस्करण, खण्ड 8 (कान्स्टीट्यूशनल ला) पृ० 548।
2. अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के संबंध में देखिए—डी स्मिथ, कान्स्टीट्यूशनल एन्ड एडमिनिस्ट्रेटिव ला (दूसरा संस्करण), पृ० 482—496।
3. बमेन लि० सेकुलर सोसाइटी, (1917) ए०सी० 406 (हाउस आफ लार्डस)

इंग्लैंड में किया गया तत्कालीन सुझाव ।

5.4. जानकारी की तौर पर यह भी बतलाया जा सकता है कि एक तत्कालीन अंग्रेजी पुस्तक[1] के, जिसमें बिल आफ राइट्स अधिनियमित किए जाने के लिए तर्क प्रतिपादित किए गए हैं, परिशिष्ट में (लेखक द्वारा सुझाया गया) इंग्लैंड के लिए बिल आफ राइट्स का प्रारूप दिया गया है और इस प्रकार सुझाए गए बिल के विभिन्न खण्डों में से एक वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य से संबंधित है। उसमें यह प्रस्तावित किया गया है कि यह अधिकार सभी "व्यक्तियों" को उपलब्ध होना चाहिए। प्रकृत और कृत्रिम व्यक्ति के बीच कोई विभेद नहीं किया गया है। यथा प्रस्तावित सुसंगत खण्ड इस प्रकार है :—

> "प्रत्येक व्यक्ति को, या तो लोकहित की दृष्टि से आवश्यक अथवा अन्य व्यक्तियों के हित में युक्तियुक्त रूप से वांछनीय निर्बन्धनों के अध्यधीन रहते हुए, वाक्-स्वातन्त्र्य का अधिकार प्राप्त होगा।"

संयुक्त राष्ट्र ।

5.5. अब हम संयुक्त राष्ट्र के बारे में विचार करेंगे। संयुक्त राष्ट्र में निगमों को उपलब्ध सिविल अधिकारों के संबंध में स्थिति कुछ जटिल है, और सूत्र उलझे हुए हैं। अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य के विनिर्दिष्ट विषय पर, विलिस[2] के निम्नलिखित कथन से शुरूवार्थ की जा सकती है :—

> "जैसा कि उन मामलों से, जिनमें कि न्यायालयों ने यह ठहराया है कि संवैधानिक प्रतिभूति नियम के अपवादों के कारण लागू नहीं होती, प्रकट होता है वाक्-स्वातन्त्र्य और प्रेस स्वातन्त्र्य की संवैधानिक प्रत्याभूति द्वारा निगम व्यक्तियों के रूप में उतने ही संरक्षित हैं जितने कि प्रकृत व्यक्ति।[3] "

संयुक्त राष्ट्र में निगम के अधिकार-प्रथम संशोधन ।

5.6. संयुक्त राष्ट्र के उच्चतम न्यायालय को,[4] मैसाचुसेट्स के अभी हाल ही के एक मामले में मैसाचुसेट्स के एक कानून का विवेचन करने का अवसर मिला था जिसके द्वारा बैंकों और व्यापार निगमों द्वारा रेफरेन्डम पर मत को प्रभावित करने के लिए धन के व्यय को, जब तक कि विधियां संबंधित निगम के हितों को "सात्विक रूप से प्रभावित नहीं करतीं, अपराध बताया गया है। उच्चतम न्यायालय ने यह ठहराया कि चूंकि इस कानून से प्रथम संशोधन का अतिक्रमण होता है अतः वह शून्य है। इस मामले में, दो बैंक और तीन कंपनियां अपना यह मत प्रचारित करना चाहती थीं कि मैसाचुसेट्स के संविधान को इस प्रकार संशोधित नहीं किया जाना चाहिए कि जिससे वर्गीकृत व्यक्तिगत आय कर अनुज्ञात किया जा सके। मैसाचुसेट्स के प्रश्नगत कानून के परिणामस्वरूप ऐसे प्रचार पर सामूहिक व्यय प्रतिषिद्ध हो जाता। बैंकों और कंपनियों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि इस कानून से प्रथम संशोधन का अतिक्रमण होता था। उच्चतम न्यायालय द्वारा यह संकथन स्वीकार कर लिया गया। उच्चतम न्यायालय के बहुमत का निर्णय न्या० पावेल द्वारा दिया गया जिसमें की गई विधि की व्याख्या का उल्लेख बाद में किया जाएगा।[5]

---

1. जेकोनेल्ली, इनेक्टिंग आफ बिल आफ राइट्स (1980) परिशिष्ट, पृ० 291, खण्ड 2 (एक)।
2. विलिस, कांस्टीट्यूशनल ला आफ दि युनाइटेड स्टेट्स (1936) पृ० 856-857।
3. **म्युच्युअल फिल्म कार्पो० वि० इन्डष्ट्रियल कमीशन आफ ओहियो** (1914) 215 फेड० 138, वही (1915), 236, यु० एस० 230, **युनाइटेड स्टेटस वि० टोलेडो न्युज पेपर कं०** (1915) 220, फेड० 458, वही (1916) 237 फेड० 986 (कन्टेम्प्ट), **म्युच्युअल फिल्म कार्पो० वि० सिटि आफ शिकागो** (1915) 224 फेड० 101 (फिल्म्स), **डेनर वि० स्टार क्रानिकल पब्ली० कं०** (1910) 230 एम० मो० 613,13 एस० डब्ल्यू० 1143 (लिबेल), **केली० वि० इन्डिपेन्डेन्ड पब्ली० कं०** (1912) 45 मान्ट, 127, 122 पे० 735 (लिबेल), **विलियम प्रिन्टिंग कं० वि० साण्डर्स** (1912), 113 वा० 156, 73 एस० इ० 472 तुलना कीजिए 48 हार्व एव० रे० 507।
4. **फष्ट नेशनल बैंक वि० बेल्लोटठी** (1978) उच्चतम न्या० 1407, 55एल०एड० 707,435, यू० एस० 765, पुनः सुनवाई 57 एल०एड० 2 डी० 1150।
5. नीचे का पैरा 5.8।

मु० न्या० बर्जर ने सहमत होते हुए कहा कि "प्रथम संशोधन व्यक्तियों या सत्ताओं के किन्हीं परिभाष्य प्रवर्गों से संबंधित नहीं है; यह उन सभी से संबंधित है जो स्वातन्त्र्य का प्रयोग करते हैं।[1] मुख्य न्यायाधीश की उक्ति, प्रथम संशोधन के प्रयोजन के लिए, निसंदेह सभी अपकृत व्यक्तियों को प्रकृत व्यक्तियों के समकक्ष मानती है।

अग्रणी मामले।

5.7 इस संदर्भ में, यह उल्लेख भी किया जा सकता है कि अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा प्रकाशन के दायित्व से सुसंगत कुछ अग्रणी मामलों में निगम भी अन्तर्ग्रस्त थे।[2-7]

संयुक्त राज्य अमेरिका में वाक्-स्वातंत्र्य सभी सत्ताओं को उपलब्ध है।

5.8 यह कहा गया है[8] कि वाक्-स्वातन्त्र्य और प्रेस-स्वातन्त्र्य सभी को उपलब्ध है[9]। संयुक्त राज्य में ये दोनों स्वतंत्रतायें अमेरिकी विदेशी निवासी[10] को भी दी जाती हैं। व्यष्टियों के संगमों, जैसे श्रम संघ और निगम भी इस संवैधानिक अधिकार का उपयोग करने[11] के लिए वैसे ही हकदार हैं जैसे कि व्यष्टि क्योंकि जनता को जानकारी देने की सामर्थ्य के रूप में भाषण का अन्तर्निहित मूल्य स्रोत की विशिष्टता पर निर्भर नहीं करता, चाहे वह निगम, संगम या संघ अथवा व्यष्टि हो सकता है।[12]

फर्स्ट नेशनल बैंक आफ बास्टन वि० बेल्लोट्टी में न्यायाधीशों की बहुसंख्या की राय।

5.9 संयुक्त राज्य के उच्चतम न्यायालय के हाल ही के एक निर्णय में[13], जो मैसाचुसेट्स के निगमों से संबंधित था, न्या० पावेल ने (जिन्होंने न्यायाधीशों की बहुसंख्या का निर्णय दिया था) इस तर्क को कि प्रथम संशोधन का संरक्षण ऐसे निगमों तक सीमित रखा जाना चाहिए जो मुख्यत: संसूचना के कारबार में लगे हुए हैं, नामंजूर करते हुए, कुछ महत्वपूर्ण समुक्तियां कीं। सुसंगत समुक्तियां निम्नानुसार हैं :—

"संरक्षित भाषण के क्षेत्र में, विधान मंडल उन विषयों के बारे में, जिन पर कि व्यक्ति भाषण कर सकते हैं, तथा उन वक्ताओं के बारे में, जो किसी सार्वजनिक विषय पर भाषण कर सकते हैं, आदेश देने के लिए संवैधानिक रूप से अनर्ह हैं। **पुलिस डिपार्टमेंट आफ शिकागो वि० मोसले**, 408 यू० एस० 92, 96, 33 एल० एड० 2 डी० 212 एस० सीटी० 2286 (1972)"

इस तर्क को नामंजूर करते हुए कि विधान मंडल व्यापार निगमों को यह निदेश दे सकता है कि वह जनता को संबोधित करते समय "अपने व्यापार से संबंध रखे," न्या० पावेल ने आगे यह विचार व्यक्त किया कि "शासन की विचार-अभिव्यक्ति की दिशा निर्देश करने की शक्ति को प्रथम संशोधन के अधीन स्वीकार नहीं किया जा सकता।

"विशेषत: उस स्थिति में, जैसी कि यहां है, जब विधान मंडल द्वारा किया जाने वाला भाषण-नियंत्रण विवादास्पद लोक प्रश्न के एक पक्ष को जनता के समक्ष अपने

---

1. विस्तृत विवेचन के लिए देखिए आर्चीबाल्ड कं०, "फ्रीडम आफ एक्सप्रेशन इन दी बर्जर कोर्ट" (1980) हार्वर्ड ला रिव्यू० पृ 1–93 और आर्चीबाल्ड कं० फ्रीडम आफ एक्सप्रेशन (1981) पृ० 78–83।
2. **एन० वाई० टाइम्स कं० वि० यू० एस०** (1971) 20 एल० एड० 2 डी० 820।
3. **एन० वाई० टाइम्स कं० वि सलीवान** (1964) 376 यू० एस० 254।
4. **रिचमान्ड न्यूजपेपर इन्का० वि० वर्जीनिया** (1980) 100।
5. देखिए नोट "कार्पोरेशन एण्ड दी कान्स्टीट्यूशन" (जुलाई 1981) 90 एल० एल० जे० 1833–1860।
6. **जटज वि० राबट वेल्च इन्का०** (1974) 418 यू० एस० 323।
7. **ओल्ड डोमिनियन ब्रान्च वि० आस्टिन** (1974) 418 यू० एस० 264।
8. खण्ड 16ए, अमे० ज्युरि० 2 डी "कान्स्टीट्यूशनल ला" पृ० 330–331, सेक्सन 501।
9. **मरडाक वि० पेन्सिलवानिया**, 87 एल०एड० 1292।
10. **ब्रिजेज वि० विक्सन** 89, एल०एड० 2103।
11. **बोवे वि० सेक्रटरी आफ दी कामनवेल्थ**, 320 मै० 230, 60 एन० ई० 2 डी० 115 लेबर यूनियन्स।
12. **फर्स्ट नेशनल बैंक वि० बैल्लोटडी** (1978) एल० एड० 2 डी० 707 (पुन: सुनवाई नामंजूर कर दी गई 57 एल० एड० 2 डी० 1150)।
13. ऊपर का पैरा 5.6।

विचार प्रकट करने की प्रसुविधा देने के प्रयास का द्योतन करता है, तब वह प्रथम संशोधन का स्पष्टतः अतिक्रमण करता है ।"

न्या० पावेल का मत (बहुमत) ।

5.10. न्या० पावेल ने ऊपर वर्णित मामले में, [1]इस तर्क को नामंजूर कर दिया कि प्रश्नगत स्वतंत्रता "पूर्णतः निगमित-व्यापार-संक्रियाओं से संबंधित है । उन्होंने यह व्यक्त किया कि इसका अर्थ यह होगा कि उन निगमित क्रियाकलापों को, जिन्हें व्यापक रूप से शैक्षिक और सामाजिक दृष्टि से सृजनात्मक माना जाता है, प्रतिषिद्ध किया जा सकता है । उनके द्वारा फुट-नोट में की गई उक्तियों के कुछ महत्वपूर्ण वाक्य नीचे उद्धृत किए जाते हैं :—

"निगम—अंशदान और लोक सेवा विज्ञापनों द्वारा—शैक्षिक, पूर्त, सांस्कृतिक या मानव-अधिकार संबंधी उद्देश्यों का समर्थन नहीं कर पायेंगे । इसी प्रकार, राष्ट्रीय हित के विषयों, जैसे कि मुद्रास्फीति और विश्वव्यापी ऊर्जा समस्या के संबंध में जानकारी देने वाले विज्ञापनों को प्रतिषिद्ध किया जा सकेगा । इनमें से बहुत से उद्देश्यों और विषयों को "सामाजिक", "राजनैतिक", या "विचारात्मक" निरूपित किया जा सकता है ।

मुख्य न्या० बर्जर का मत (सहमतिपूर्ण निर्णय) ।

5.11. यहां यह बताना विशेष महत्व का होगा कि मुख्य न्या० बर्जर ने, जिन्होंने उपर्युक्त मामले[2] में पृथक् किन्तु सहमतिपूर्ण निर्णय दिया, निचले न्यायालय की व्यवस्था से (जिसे उच्चतम न्यायालय द्वारा उलट दिया गया) अपनी असहमति इन शब्दों में व्यक्त की :—

"मैसाचुसेट्स की स्थिति का चिन्ताजनक पहलू यह है कि उससे उनके, जो जन संसूचना, विशेषतः लार्जमीडिया कांग्लोमरेट, का कारबार करने में निगमित स्वरूप को व्यवहार में लाते हैं — जैसा कि बहुत से करते हैं—प्रथम संशोधन अधिकारों को धक्का पहुंचने का जोखिम हो सकता है ।

यह स्थिति मीडिया कार्पोरेशनों और उन कार्पोरेशनों के, जैसे कि इस मामले में अपीलार्थी हैं, बीच या तो वास्तविक रूप से या संवैधानिक विधि की दृष्टि से विभेद करने की कठिनाई या असंभाव्यता के कारण है ।"

अन्य विचार ।

5.12. यह उल्लेख किया जा सकता है कि कुछ न्यायाधीशों (जैसे न्या० ब्लेक और न्या० डगलस) ने जबकि इस विषय पर भिन्न मत व्यक्त किया है, उन्होंने भी यह स्वीकार किया है कि इतिहास ने कुछ दूसरा ही मोड़ लिया था ।[3]

प्रिचेट द्वारा समाहृत ।

5.13. अमेरिकन संविधान[4] के एक सुपरिचित लेखक ने निम्नलिखित टिप्पणियां की हैं :—

"उदारवादी लोकतंत्रात्मक समाज में समूहों के महत्व को दृष्टिगत रखते हुये, व्यष्टियों को अधिकार प्रदान करना और संगठित समूहों को उनसे वंचित रखना एक भ्रामक और अनुदारवादी नीति होगी ।"

इस संबंध में, 1951 में विनिश्चित किए गए एक अमेरिकन मामले में किया गया समूहों के अधिकार का बचाव भी ध्यान देने योग्य है ।[5]

फर्स्ट नेशनल बैंक वि० बेल्लोटी के मामले की समीक्षा ।

5.14. **फर्स्ट नेशनल बैंक आफ बोस्टन** वि० बेल्लोट्टी के मामले में (जिसका विवेचन ऊपर किया गया है)[6] उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के बारे में संयुक्त राज्य में महत्वपूर्ण

1. फर्स्ट नेशनल बैंक आफ बोस्टन बि० बेल्लोट्टी, (1978) 55 एल०एड० 2 डी० 707,727 और फुट नोट ।
2. फर्स्ट नेशनल बैंक आफ बोस्टन वि० बेल्लोट्टी, (1978) 55 एल०एड०2 डी० 707,725 ।
3. मीलिंग स्टील कर्पो० वि० ग्लैण्डर (1949) 337 सं० रा०562 ।
4. प्रिचेट–अमेरिकन कांस्टिट्यूशन (टी०एम०आर० एडीशन 1977) पृ०524 ।
5. ज्वाइन्ट एण्टी–फासिस्ट रिफ्यूजी कमेटी वि० मैक ग्राथ (1951) 341, सं० रा० 123 ।
6. ऊपर का पैरा 5.6 ।

साहित्य विद्यमान है । कुछ समीक्षकों ने सैद्धांतिक विकास के आधार पर इस विनिश्चय का पक्ष पोषण किया है । इन समीक्षकों में से सबसे अधिक उल्लेखनीय हार्वर्ड ला रिव्यू[1] में दी गई समीक्षा है । कुछ समीक्षाओं में, राजनीति में व्यष्टि की भूमिका पर पड़ने वाले इस विनिश्चय के प्रभाव पर चिन्ता प्रकट की गई है ।[2] कुछ समीक्षकों ने अल्पसंख्यक अंशधारकों[3] पर इस विनिश्चय के प्रभाव के प्रति चिन्ता व्यक्त की है । कुछ लोगों ने, यह दलील देते हुए कि यह विनिश्चय एकपक्षीय राजनैतिक संवाद[4] को रोकने में प्रथम संशोधन के हित को नकारता है, इस विनिश्चय की आलोचना सैद्धांतिक आधार के संबंध में की है । अन्ततः, कुछ लोगों ने यह विचार व्यक्त किया है कि सामूहिक अधिकारों को तब मान्यता दी जानी चाहिए जबकि वे अधिकार अनिगमित संगमों पर भी विस्तारित करना समुचित हो । इसके पीछे यह तर्क दिया गया है कि ऐसे निगमों की संकल्पना करना भूल है जिन्हें सदस्यों[5] के अधिकारों से भिन्न अधिकार प्राप्त हों । यह तर्क भी प्रस्तुत किया गया है कि ऐसे विनिश्चय सशक्त सहभागिता तथा सशक्त व्यष्टिक अधिकारों[6] से युक्त उदार लोकतंत्र प्राप्त करने के प्रयत्नों को बाधा पहुंचाते हैं ।

तथापि, कुल मिलाकर इस विनिश्चय का उस सीमा तक स्वागत किया गया है जहां तक कि वह सामूहिक वाक्-स्वातंत्र्य को मान्यता देता है । यह उल्लेख किया जा सकता है कि प्रथम संशोधन का संरक्षण, बेल्लोट्टी के मामले के पूर्व भी सं० रा० के अनेक विनिश्चयों में निगमों पर विस्तारित किया गया है । ये विनिश्चय, निम्नलिखित से संबंधित हैं :—

(क) अपमानलेख विधियां,[7]

(ख) विशेष कराधान,[8]

(ग) अश्लीलता विषयक विधियां,[9] और

(घ) व्यापार-विज्ञापन[10] के विभिन्न प्रकारों पर निर्बन्धन ।

समाचार-पत्रों भिन्न संगठनसे ।

5.15. समाचार-पत्रों से संबंधित संगठनों से भिन्न संगठनों द्वारा दावाकृत अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य से संबंधित मामले भी सं० रा० अ० में उपलब्ध हैं । इस प्रकार, राक म्युजिकल "हेयर" प्रस्तुत करने के लिए म्युनिसिपल नाट्य शाला के उपयोग के लिए थियेट्रीकल प्रोडक्शन्स के संप्रवर्तकों द्वारा किया गया आवेदन चट्टनूगा म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा नामंजूर कर दिए जाने से संवैधानिक रूप से आवश्यक न्यूनतम रक्षोपाय[11] विहीन पद्धति के अधीन अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर पूर्विक निर्बन्धन गठित होता है । कुछ व्यक्तियों द्वारा इस विनिश्चय के बारे में यह माना जाता है कि वह पब्लिक फोरम[12] के अधिकार पर आश्रित हैं । इसी प्रकार,

---

1. "दि सुप्रीम कोर्ट, 1977 टर्म" (1979) 92 हार्वर्ड ला रि० 57, 163-164 ।
2. हार्ड एण्ड शोर, "कार्पोरेशन स्पेन्डिंग आन स्टैट एंड लोकल रेफेन्डम्स" (1979) खण्ड 29 केस वेस्टर्न रिजर्व का रिव्यू 808, ।
3. नोट "पोलीटिकल कान्ट्रीब्यूशनस" (1979) खण्ड 4 जनरल आफ कार्पोरेशन ला 460 ।
4. देखिए "फिलासफी आफ लेंग्वेज एंड फ्री एक्स्प्रेशन (1980) खण्ड 55 न्यूयार्क यूनिवर्सिटी ला रिव्यू 157,189,190 ।
5. ओ 'केली, "दि कान्स्टीट्यूशनल राइट्स आफ कार्पोरेशन्स रिविजिटेड", (1979) खण्ड 67, जार्जिया ला जनरल 1347 ।
6. विस्तृत विश्लेषण के लिए देखिए आर्चीबाल्ड कोक्स, "फ्रीडम आफ एक्सप्रेशन इन दि बर्जर कोर्ट" (1980) 94 हार्वर्ड ला रिव्यू, पृ० 1-98 ।
7. **न्यूयार्क टाइम्स कं० वि० सलीवान** (1964) 376 सं० रा० 254 ।
8. **ग्रासजीन वि० अमेरिकन पब्लिशिंग कं०** (1936) 297 सं० रा० 183।
9. **बैन्टम बुक इन्का० वि० सलीवान** (1963) 372 सं० रा० 48,92 एडी० 2 डी० 584 ।
10. **लिन्कमार्क एसोसियेट्स वि० टाउनशिप आफ विलिंग बरो** (1977) 431,सं०रा०85 ।
11. **साउथ-ईस्टर्न प्रमोटर्स लिमि० वि० कोनाई** (1975) 43 एल०एडी० 2 डी, 448, 420 सं० रा० 546 ।
12. लारेन्स ट्राइब, अमेरिकन कान्स्टीट्यूशनल ला (1978) पैरा 12-21, आर्चीबाल्ड कोक्स द्वारा यथा उद्धृत फ्रीडम एक्स्प्रेशन (1981), पृ० 58 फुटनोट 205 ।

निगम को अन्तर्ग्रस्त करने वाले एक मामले[1] में यह ठहराया गया कि पूर्विक अवरोध के रूप में लगाया गया कोई विशिष्ट निर्बन्धन विधिमान्य नहीं था क्योंकि उससे एक "आपवादिक" मामला[2] उपस्थित होता है।

संं० रा० अ० में अन्य स्वतंत्रताएं—निगमों के बारे में स्थिति ।

5.16. यह प्रश्न भी विशेष महत्व का है कि (वाक्-स्वातन्त्र्य तथा प्रेस स्वातन्त्र्य के अलावा) अन्य स्वतन्त्रताओं का अमेरिका में निगमों द्वारा किस सीमा तक दावा किया जा सकता है। उस पर विस्तारपूर्वक विचार करना आवश्यक नहीं है किन्तु निम्नलिखित प्रमुख प्रतिपादनायें, जो अंशत: अमेरिकन विधिशास्त्र से चुनी गई हैं, और अंशत: अन्य स्रोतों से ली गई हैं, ध्यान देने योग्य[3] प्रतीत होती हैं :—

(क) पांचवें और चौदहवें संशोधन के अधीन दावा किए गए संपत्ति अधिकारों के प्रयोजन के लिए, निगम एक "व्यक्ति" है[4]।

(ख) चौदहवें संशोधन के समान संरक्षण खण्ड के प्रयोजन के लिए भी, निगम एक "व्यक्ति" है[5]।

(ग) पंचम संशोधन के स्वयं को फंसाने के विरुद्ध के प्रयोजन के लिए, निगम कोई "व्यक्ति"[6] नहीं है।

(घ) चौदहवें संशोधन द्वारा प्रत्याभूत अन्य स्वतंत्रताओं के प्रयोजन के लिए, निगम किसी सीमा तक "व्यक्ति"[7] है या नहीं, या प्राख्यात अधिकार पर निर्भर करता है।

(ङ) चौदहवें संशोधन के उस भाग के प्रयोजन के लिये, जो यह उपबंधित करना है कि "नागरिकों" के विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां निर्बन्धित नहीं की जाएंगी, निगम को नागरिक[8] नहीं समझा जाएगा।

अन्य संविधानों में सामान्यत: स्थिति ।

5.17. यह कहा जाता है कि म्युनिसिपल ला[9] में प्राय: विदेशियों के राजनैतिक क्रियाकलाप के बारे में उपबंध अन्तर्विष्ट होते हैं। उदाहरणार्थ, निकरगुआं के संविधान के अनुच्छेद 25 में यह कहा[10] गया है कि विदेशी देश के कार्यकलापों में प्रत्यक्षत: या परोक्षत: मध्यक्षेप करने से प्रतिषिद्ध हैं। इस प्रतिषेध का अतिक्रमण संबंधित विदेशी को अभियोजन और निष्कासन का भागी बनाता है। तथापि, ऐसे अभिव्यक्त संवैधानिक उपबंध बहुत कम हैं। संविधानों के विषय में विवक्षित और पर एक सामान्य बात यह है कि वे विदेशियों द्वारा राजनैतिक क्रियाकलापों में भाग लेने पर निर्बन्धन लगाने की इजाजत देते हैं। जबकि अभिमत और भाषण की स्वतंत्रता प्राय: सभी व्यक्तियों को दी जाती है, विधि के समक्ष[11] समानता केवल नागरिकों को ही दी जाती है। इस प्रकार, जहां तक इन स्वतंत्रताओं के प्रयोग का प्रश्न है, नागरिकों और विदेशियों के बीच विभेद का मार्ग खुला रहता है। सामूहिक स्वतंत्रताओं, जैसे संगम बनाने और सम्मेलन की स्वतंत्रता का जहां तक संबंध है, वे प्राय: नागरिकों को ही

1. बैंटम बुक इनका० वि० सुलीवान (1963) 372, यू०एस० 48, 9 एल०एड०, 2 डी० 584।
2. तुलना कीजिए—ऊपर के पैरा 5.5 में प्रोद्धत विलिस के विचार।
3. खण्ड 18 अमे० ज्यू० 2 डी (कार्पोरेशन्स), पृ० 570–571।
4. खंण्ड 18 अमे० ज्यू० 2 डी०, सेक्शन 4।
5. खण्ड 18 अमे०ज्यू० 2 डी, सेक्शन 4।
6. खण्ड 18 अमे०ज्यू 2 डी, धारा 21।
7. निर्णयज विधि पर आधारित।
8. खण्ड 18 अमे०ज्यू० 2 डी, सेक्शन 21।
9. ए०सी० इवान्स, "दि पोलीटिकल स्टैटस आफ एलीएन्स इन इंटरनेशनल ला, म्यूनिसिपल ला एण्ड यूरोपियन कम्यूनिटी ला (जन० 1981) खंड 30, भाग 1, दि इंटरनेशनल एण्ड काम्पेरिटिव ला क्वार्टरली, पृ० 20, 24–25।
10. ए०जे० पीसली, कांस्टीट्यूशन्स आफ नेशन्स (1968) खंड 4, पृ० 959।
11. ए०सी० इवान्स, "दि पोलिटीकल स्टैटस आफ एलीएन्स इन इंटरनेशनल ला" (जन० 1981) खंड 30, भाग 1, आई० सी०एल०क्यू०पृ० 20, 24–25।

मिलती हैं । इस प्रकार, संविधानों में इस बात की सावधानी बरती जाती है विदेशियों को ऐसी स्वतंत्रताओं के प्रयोग के निर्बन्धन को प्रवारित न किया जाए ।[1]

सन् 1966 का कनेडियन बिल आफ राइट्स ।

5.18. यह ध्यान देने योग्य बात है कि 1966 के कनेडियन बिल आफ राइट्स[2] के उपबंधों का शब्द-विन्यास इस प्रकार किया गया था कि जिससे उस बिल द्वारा परिकल्पित अधिकार नागरिकों को और साथ ही अनागरिकों को लागू[3] हो सकें । कम से कम प्रथमदृष्ट्या अर्थान्वियन तो यही हो सकता है क्योंकि सुसंगत उपबंधों में "नागरिकों" जैसे सीमक शब्दों के प्रयोग से बचा गया है । बिल का भाग 1, धारा 1 तथा 2 (जहां तक कि वह तात्विक है) निम्नानुसार थीं ।

भाग 1 बिल आफ राइट्स

1. एतद्द्वारा यह मान्य और घोषित किया जाता है कि कनाडा में मूलवंश, राष्ट्रीय उद्गम, वर्ण, धर्म या लिंग के आधार पर किसी भेदभाव के बिना, निम्नलिखित मानव अधिकार और मूलभूत स्वतंत्रतायें विद्यमान थीं और विद्यमान रहेंगी, अर्थात् :—

(क) प्राण, स्वाधीनता, दैहिक सुरक्षा और संपत्ति के उपभोग का व्यक्ति का अधिकार और विधि की सम्यक् प्रक्रिया के बिना उनसे वंचित न किए जाने का अधिकार,

(ख) विधि के समक्ष समानता और विधि के समान संरक्षण का व्यक्ति का अधिकार,

(ग) धर्म-स्वातंत्र्य,

(घ) सम्मिलन और संगम का अधिकार, और

(च) प्रेस-स्वातंत्र्य ।

2. कनेडा की प्रत्येक विधि, जब तक कि कनेडा के संसद् के अधिनियम द्वारा अभिव्यक्त रूप से यह घोषित न कर दिया जाए कि वह कनेडा के बिल आफ राइट्स के होते हुए भी प्रवृत्त होगी, इस प्रकार अन्वित और लागू की जाएगी कि जिससे उसमें मान्य और घोषित की गई स्वतंत्रताओं का निराकरण, न्यूनन या अतिलंघन न हो या उनके निराकरण, न्यूनन, या अतिलंघन को प्राधिकृत न किया जाए ।

कनेडा का नया संविधान

5.19. कनेडा के नए संविधान में इस विषय पर निम्नलिखित उपबंध अन्तर्विष्ट[4] हैं :—

"कान्स्टीट्यूशन एक्ट, 1981

भाग I, कनेडियन चार्टर आफ राइट्स एण्ड फ्रीडम

यतः कनेडा उन सिद्धांतों पर संस्थापित किया गया है जो ईश्वर की सर्वोच्चता और विधि सम्मत शासन को मान्यता देते हैं :

अधिकारों और स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति :

1. कनेडा का अधिकारों और स्वातन्त्र्य का चार्टर उसमें दिए गए अधिकारों और स्वतंत्रताओं की प्रत्याभूति, विधि द्वारा विहित केवल ऐसी युक्तियुक्त सीमाओं के अधीन देता है जो स्वतंत्र और लोकतांत्रिक समाज में दृश्य रूप से न्यायोचित ठहराई जा सकती हैं ।

मूलभूत स्वतंत्रताएं

2. प्रत्येक को निम्नलिखित मूलभूत स्वतंत्रतायें प्राप्त हैं :—

(क) अन्तःकरण और धर्म की स्वतंत्रता,

---

1. एं०सी० इवान्स, "दि पोलीटीकल स्टेटस आफ एलीएन्स इन इंटरनैशनल ला एटसेटरा" (जन० 1981) खंड 30, भाग 1, आई०सी०एल०क्यू० पृ० 20, 24–25 ।
2. प्रिएम्बिल, और भाग 1, सेक्शन 1, और 2, कनेडियन बिल आफ राइट्स, 1960, 1960 (8–9 एलिज 2 अ० 44) ।
3. पाठ के लिए देखिए टरनोपालस्की, कनेडियन बिल आफ राइट्स (1966) पृ० 229 (परिशिष्ट 1)
4. कान्स्टीट्यूशन एक्ट, 1981, भाग 1, कनेडियन चार्टर आफ राइट्स एण्ड फ्रीडम्स, सेक्शन 1–2 ।

(ख) विचार, विश्वास, अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस-स्वातंत्र्य, संसूचना के अन्य साधनों की स्वतंत्रता को सम्मिलित करते हुए,

(ग) शान्तिपूर्ण सम्मेलन, और

(घ) संगम की स्वतंत्रता ।[1]

कामनवेल्थ का एक पूर्वोदाहरण- एन्टीगुआ का संविधान ।

5.20. हमें यह भी ज्ञात हुआ है कि "न्यू कामनवेल्थ" के एक देश एन्टीगुआ में, संविधान में अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य ऐसे शब्दों में प्रदान किया गया है जिनमें उन अभिव्यक्तियों से बचा गया है जो आवश्यक रूप से प्रकृत व्यक्तियों तक सीमित हैं। एन्टीगुआ संविधानस्[2] की धारा 10 निम्नानुसार[3] है:

"(1) किसी भी व्यक्ति को, उसकी स्वयं की सहमति के बिना, उसके अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के उपभोग में बाधा नहीं पहुंचाई जाएगी, और इस धारा के प्रयोजन के लिए उक्त स्वातन्त्र्य के अन्तर्गत, किसी हस्तक्षेप के बिना अभिमत और विचार तथा जानकारी प्राप्त करने और देने की स्वतंत्रता तथा उसके पत्र-व्यवहार और संसूचना के अन्य साधनों में हस्तक्षेप से स्वतंत्रता भी आती है।

(2) किसी विधि में अन्तर्विष्ट अथवा किसी विधि के प्राधिकार के अधीन की गई कोई बात उस सीमा तक इस धारा से असंगत या उसके उल्लंघन में नहीं मानी जाएगी जहां तक कि प्रश्नगत विधि ऐसे उपबंध करती है :—

(क) जो—

(1) प्रतिरक्षा, लोक क्षेम, लोक व्यवस्था, लोक सदाचार या लोक स्वास्थ्य के हित में,

(2) अन्य व्यक्तियों की ख्याति, अधिकारों और स्वतन्त्रताओं का या विधिक कार्यवाहियों में सम्पृक्त व्यक्तियों के व्यक्तिगत जीवन का संरक्षण करने, वैश्वासिक हैसियत में प्राप्त जानकारी के प्रकटन को निवारित करने, न्यायालयों का प्राधिकार और स्वतंत्रता बनाए रखने या टेलीफोनी, टेलीग्राफी, पोस्ट्स, वायरलेस ब्राडकास्टिंग, टेलीविजन या संसूचना के अन्य साधनों, पब्लिक एक्जीबिशन या पब्लिक एन्टरटेन्मेन्ट्स का विनियमन करने के प्रयोजन के लिए,

युक्तियुक्त रूप से आवश्यक हों, या

(ख) जो लोक अधिकारियों पर निर्बन्धन अधिरोपित करते हों।

एन्टीगुआ के संविधान की उपर्युक्त धारा के अतिरिक्त, उसके संविधान की एक अन्य धारा 15, [4]अर्थान्वयन के लिए प्रिवि काउन्सिल के समक्ष प्रस्तुत हुई थी। धारा 15 में, जो सम्पत्ति के अनिवार्य अर्जन से संबंधित है, अभिव्यक्ति "व्यक्ति" प्रयुक्त हुई है और विवादग्रस्त विनिर्दिष्ट प्रश्न यह था कि क्या इस अभिव्यक्ति में निगमित निकाय सम्मिलित हैं। प्रिवि काउन्सिल ने यह ठहराया कि वह उसमें सम्मिलित था। यह उल्लेख किया जा सकता है कि (भारतीय संविधान के समान) एन्टीगुआ के संविधान की निर्वचन-धारा द्वारा, इन्टरप्रेटेशन एक्ट को संविधान के निर्वचन के लिए अभिव्यक्त रूप से लागू किया गया था। न्यू कामनवेल्थ[5] के अन्य देशों में भी इसी प्रकार के संवैधानिक पूर्वोदाहरण मिलते हैं।

---

1. देखिए मकविन्नी, कनेडा, एण्ड दी कांस्टीट्यूशन 1979–1982 (1983) परिशिष्ट–ई,० पृ० 173।
2. एन्टीगुआ कांस्टीट्यूशन आर्डर 1967 (एस०आई० 1967 नं० 225)।
3. देखिए मारगेरेट डी मेरिक्स, "डेलीनिएशन आफ दी राइट्स टु फ्रीडम, आफ एक्सप्रेशन" (1980) पब्लिक ला, 359,360।
4. एटार्नी जनरल वि० एण्टीगुआ टाइम्स लिमि० (1975) 3 आल०ई०आर० 81 (पी०सी०)।
5. अन्य पूर्वोदाहरणों के लिए, देखिए हेल्सबरी, चतुर्थ संस्करण, खण्ड 6, पृ० 476–483, पैरा 1023 1026।

अध्याय 6

कार्य-पत्रक पर प्राप्त समीक्षाएं

कार्य-पत्रक पर अपेक्षित समीक्षाएं ।

6.1. जैसा कि पूर्व[1] में बताया गया है, विधि आयोग ने हितबद्ध व्यक्तियों और निकायों से आयोग द्वारा इस विषय पर तैयार किए गए कार्य-पत्रक पर समीक्षाएं आमंत्रित की थीं। यह अनुरोध किया गया था कि समीक्षाएं 31 दिसम्बर, 1983 तक आयोग को भेज दी जाएं। आयोग ने उन सभी समीक्षाओं पर विचार किया जो इस रिपोर्ट के हस्ताक्षरित किए जाने की तारीख तक प्राप्त हुई थीं।

समीक्षाओं का विश्लेषण ।

6.2. गोपनीय स्वरूप के एक उत्तर के अतिरिक्त, आयोग को कार्य-पत्रक पर कुल दस उत्तर प्राप्त हुए। इनमें से, पांच उत्तरों में मोटे तौर पर इस विचार से सहमति[2] प्रकट की गई है कि संविधान को इस रिपोर्ट में उपदर्शित रीति में संशोधित किया जाना चाहिए[3]। दो उत्तरों में इस विचार से सहमति प्रकट नहीं की गई हैं। दो उत्तरों में कोई समीक्षा नहीं दी गई है। एक उत्तर में समीक्षा भेजने के लिए समय मांगा गया था किन्तु आयोग द्वारा नियत की गई अंतिम तारीख के पश्चात् दो मास बीत जाने पर भी उस स्रोत से कोई समीक्षा प्राप्त नहीं हुई।

वे उत्तर, जिनमें अनुच्छेद 19 को संशोधित करने की आवश्यकता से सहमति व्यक्त की गई है ।

6.3. वे पांच उत्तर, जिनमें अनुच्छेद 19(1)(क) को निगमों पर विस्तारित करने पर सहमति व्यक्त की गई है, निम्नलिखित स्रोतों से प्राप्त हुए हैं :—

(1) एक उच्च न्यायालय से,[4]

(2) दो राज्य सरकारों से,[5]

(3) एक राज्य के विधि आयोग से,[6] और

(4) उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश से[7]।

राज्य विधि आयोग की ओर से भेजा गया उत्तर, राज्य विधि आयोग के सम्मिलन द्वारा पुष्टि के अध्यधीन है। इसके अतिरिक्त वह इस टिप्पणी के भी अध्यधीन है कि किसी निगम में अंशधारिता शत-प्रतिशत या पूर्णतः भारतीय होनी चाहिए।

6.4. जिन समीक्षाओं में यह दृष्टिकोण प्रतिपादित किया गया है कि संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) निगमों पर विस्तारित नहीं किया जाना चाहिए, वे निम्नलिखित स्रोतों से प्राप्त हुई हैं :—

(1) एक राज्य सरकार[8] से, और

(2) उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश[9] से।

---

1. ऊपर का पैरा 1.9।
2. नीचे का पैरा 6.3।
3. नीचे का पैरा 6.4।
4. विधि आयोग की फाइल नं० एफ० 2 (13) 83-एल०सी०सी०नं० 3।
5. विधि आयोग की फाइल नं० एफ० 2 (3) 83-एल०सी०सी०नं० 7।
6. विधि आयोग की फाइल नं० एफ० 2 (13) 83-एल०सी०सी० नं० 9 (स्टेट ला कमीशन आफ एम० पी०)।
7. विधि आयोग की फाइल नं० एफ० 2(13)/83-एल०सी०सी० नं० 10।
8. विधि आयोग फाइल नं० एफ० 2 (13)/83 एल०सी०सी०नं० 11।
9. विधि आयोग फाइल नं० एफ० 2 (13)/83—एल०सी०सी० नं० 10।

समीक्षाओं में संशोधन की आवश्यकता के बारे में प्रतिपादित कुछ भद्दे ।

6.5. हमारे कार्य-पत्रक के संबंध में प्राप्त कुछ समीक्षाओं में यह राय व्यक्त[1] की गई है कि चूंकि व्यक्ति अपने वाक्-स्वतान्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य को प्रवर्तित कराने के लिए समुचित कार्यवाही कर सकते हैं, अत: संविधान को इस प्रयोजन के लिए संशोधित करने की आवश्यकता नहीं है। इस संदर्भ में, हम यह बताना चाहेंगे कि जैसा कि हमने अपने कार्य-पत्रक में पहले ही उल्लेख किया है, भले ही यह मान लिया जाए कि व्यक्तिगत सम्पादक तथा मीडिया से सम्पृक्त इसी प्रकार के अन्य कृत्यकारी समुचित उपचार का सहारा ले सकते हैं, फिर भी निगमों के अधिकारों को विनिर्दिष्ट रूप से मान्यता देना आवश्यक है। इस बिन्दु पर इस रिपोर्ट के पूर्ववर्ती अध्याय[2] में विशद चर्चा की जा चुकी है और इस प्रक्रम पर उस पर पुन: चर्चा करना आवश्यक नहीं है। इसके अतिरिक्त, यह आवश्यक है कि निगमों की स्थिति के बारे में विधि निर्धारित की जाए[3]।

संशोधन की व्याप्ति ।

6.6. इस प्रक्रम पर यह स्पष्ट करना भी सुविधापूर्ण प्रतीत होता है कि हम जो सिफारिश कर रहे हैं, वह केवल उन निगमों तक सीमित नहीं है जो मुख्यत: जनसंपर्क साधनों में लगे हुए हैं। इस सिफारिश में (अंशधारिता और सदस्यता से संबद्ध कुछ मापदंडों के अध्यधीन रहते हुए) सभी निगम सम्मिलित हैं चाहे उनके क्रियाकलाप का मुख्य क्षेत्र कुछ भी हो। हमारे द्वारा की गई स्पष्ट सिफारिशों से स्थिति पूर्णत: स्पष्ट हो जाएगी[4]। वास्तव में, कार्य-पत्रक में भी इस प्रकार का प्रस्ताव किया गया था। इस बिन्दु का उल्लेख इस रिपोर्ट के एक पूर्ववर्ती अध्याय में भी किया गया[5] है। जब तक कि कंपनी या निगम का स्वरूप भारतीय रहता है, उसे संरक्षण मिलना ही चाहिए[6]।

---

1. उदा विधि आयोग फाइल नं० एफ० 2 (13)/83—एल०सी०सी०नं० 10 (उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश)।
2. ऊपर का अध्याय 4।
3. देखिए ऊपर का पैरा 3.6।
4. नीचे का पैरा 7.5।
5. ऊपर का पैरा 4.11।
6. देखिए नीचे के पैरा 7.1 (ख), 7.2 और 7.5।

अध्याय 7

संविधान के संशोधन के लिए सिफारिश

विवाद्य बिंदुओं पर दो महत्वपूर्ण आधार।

7.1. संविधान को विवाद्य विषयों के संबंध में जिन आधारों पर संशोधित किया जाना चाहिए, उन पर विचार करने के पश्चात्, हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि कोई भी संशोधन निम्नलिखित दो मुख्य आधारों को ध्यान में रख कर सूत्रित किया जाना चाहिए :—

(क) संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अधीन संरक्षण उन सत्ताओं को भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए जो "प्रकृत" व्यक्ति नहीं हैं किन्तु जिन्हें निगमित स्थिति प्राप्त है। ऐसी सत्ताओं की सूची बनाने में, उन विभिन्न संगठनों का ध्यान रखा जाना चाहिए जिनका उल्लेख किया गया है[1]।

(ख) साथ ही, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि निगमों का स्वरूप, "भारतीय" हो जैसा कि प्रकृत व्यक्तियों के लिए (जो वर्तमान में अनुच्छेद 19 के संरक्षण के हकदार हैं) आवश्यक है कि संरक्षण का दावा करने के लिए उन्हें भारत का नागरिक होना चाहिए। इस अधिकार को अनागरिकों पर विस्तारित करना इस अन्वेषण का विषय नहीं है।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि उपर्युक्त (ख) पर वर्णित आधार, ऊपर (क) पर वर्णित आधार को विशेषित करता है, और उस पर कुछ निर्बन्धन लगाता है। संक्षेप में, उसे "भारतीयता" की संज्ञा दी जा सकती है। वह रीति, जिसमें इस निर्बन्धन को यह अधिकार अप्रकृत व्यक्तियों पर विस्तारित करते समय समाविष्ट किया जा सकता है, एक ऐसा बिन्दु है जिसकी विवेचना करना आवश्यक है। हम उस बिन्दु पर अगले कुछ पैराग्राफों में विचार करेंगे।

कंपनियां।

7.2. प्रथमतः, हम वास्तविक कंपनियों पर विचार करेंगे। "भारतीयता" की आवश्यकता (मामलों की सामान्यता में) यह विहित करके अधिरोपित की जा सकती है कि कंपनी के समस्त अंशधारकों को भारतीय नागरिक होना चाहिए। तथापि, यह हो सकता है कि अंशधारक स्वयं प्रकृत व्यक्ति न हों, किन्तु कृत्रिम व्यक्ति (या सरकार भी) हों। ऐसे मामलों को भी समाविष्ट किया जाना आवश्यक है। तद्नुसार, संशोधन द्वारा (यथाव्यवहार्य) उस सत्ता की, जो किसी कंपनी में अंशधारित करती है, भारतीयता को यथोचित भाषा में सुनिश्चित करते समय यह भी सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि इस सूक्ष्मता को भी समाविष्ट किया जाता है।[2]

हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि हमारे द्वारा परिचालित कार्यपत्रक में हमने 80 प्रतिशत भारतीय अंशधारिता की कसौटी प्रस्तावित की थी, किन्तु अब हमारा यह विचार है कि वह 100 प्रतिशत होनी चाहिए।

कंपनियों से भिन्न निगमित निकाय।

7.3. कंपनियों के अतिरिक्त, प्रश्नगत संरक्षण उन निगमित निकायों पर भी विस्तारित करना उचित होगा जो कंपनियां नहीं हैं। ऐसे निकायों के उदाहरणस्वरूप, स्थानीय प्राधिकरणों और विश्वविद्यालयों को, तथा विनिर्दिष्ट केन्द्रीय या राज्य अधिनियमों द्वारा या उनके अधीन स्थापित कानूनी निकायों को लिया जा सकता है। प्रश्नगत संरक्षण की आवश्यकता उनको भी पड़ेगी। इन सभी मामलों में, प्रस्तावित संशोधन तैयार करते समय, उस संबंध में यथोचित शर्तें अन्तःस्थापित करते हुए, उनकी "भारतीयता" सुनिश्चित करने की सावधानी

---

1. ऊपर का पैरा 1.3।
2. नीचे का पैरा 7.4 प्रस्तावित अनुच्छेद 19, स्पष्टीकरण (क)।

बरती गई है। जिस संशोधन की सिफारिश हम कर रहे हैं, उसमें इस बात को ध्यान में रखा गया है[1]।

अनिगमित निकाय।

7.4. रजिस्ट्रीकृत सोसाइटियों जैसी सत्ताओं का, जिनके लिए विधि[2] में निगमित प्रास्थिति विद्यमान नहीं हैं, जहां तक संबंध है, हमारे द्वारा सुझाया गया संशोधन लागू नहीं होगा। हमने अपने कार्य-पत्रक में (ऐसे सदस्यों से, जो भारतीय नागरिक हैं, युक्त) अनिगमित निकायों और संगमों को ऐसी सत्ताओं के रूप में समाविष्ट किया है जिन पर यह अधिकार विस्तारित किया जाना चाहिए। तथापि, अब हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि चूंकि वस्तुतः उनका विधिक व्यक्तित्व नहीं है, उन्हें विचाराधीन[3] अनुच्छेद में सम्मिलित करना आवश्यक नहीं है।

सिफारिशें।

7.5. अतः हम यह सिफारिश करते हैं कि संविधान के अनुच्छेद 19 को निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़कर संशोधित किया जाए :—

संविधान के अनुच्छेद 19 में जोड़ा जाने वाला स्पष्टीकरण

"स्पष्टीकरण—इस अनुच्छेद के प्रयोजन के लिए, जहां तक कि वह वाक्-स्वातन्त्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातन्त्र्य से संबंधित है, निम्नलिखित भारत के नागरिक समझे जाएंगे :

(क) भारत में निगमित ऐसी सभी कंपनियाँ जिनमें की कुल शेयर पूंजी निम्नलिखित द्वारा धारित है—

(1) भारत के नागरिकों द्वारा ; या

(2) सरकार द्वारा ;

(3) ऐसे किसी निगम द्वारा, जैसा कि इस स्पष्टीकरण के खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट है ; या

(4) भारत में निगमित किसी ऐसी कंपनी द्वारा, जिसमें की कुछ शेयर पूंजी भारत के नागरिकों द्वारा या सरकार द्वारा या किसी ऐसे निगम द्वारा, जैसा कि इस स्पष्टीकरण के खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट है, या उनमें से कुछ के द्वारा या सभी के द्वारा धारित है ; या

---

1. नीचे का पैरा 7.4 प्रस्तावित अनुच्छेद 19, स्पष्टीकरण (ख)।
2. देखिए (क) **बोर्ड आफ ट्रस्टीज आयुर्वेदी एण्ड तिब्बिया कालेज वि० स्टेट आफ देहली**, ए० आई० आर० 1968 उच्चतम न्या० 458।
   (ख) **कालरा एजुकेशन सोसाइटी वि० एमलगमेटेड सोसाइटी आफ रेलवे सर्वेण्टस**, ए०आई० आर० 1966, उच्चतम न्या० 1301।
   (ग) **एस०पी० मित्तल वि० दि यूनियन आफ इंडिया**, ए०आई० आ० 1983 उच्चतम न्या० 1, पैरा 67।
3. नीचे का पैरा 7.5।

(5) उनमें से कुछ के द्वारा या सभी के द्वारा[1]

(ख) कंपनियों से भिन्न सभी निगम, जो भारत[2] में तत्समय प्रवृत्त विधि द्वारा या उसके अधीन स्थापित निगम हैं।

(के० के० मैथ्यू)
अध्यक्ष

(जे० पी० चतुर्वेदी)
सदस्य

(डा० एम० बी० राव)
सदस्य

(पी० एम० बक्षी)
अंशकालीन सदस्य

(बेपा पी० सारथी)
अंशकालीन सदस्य

(ए० के० श्रीनिवासमूर्ति)
सदस्य सचिव

तारीख 28 मई, 1984

1. ऊपर का पैरा 7.2।
2. ऊपर का पैरा 7.1 (क)।

MGIPCBE—S3—11 M of LJ & CA/ND/84—11-1-86—250 Bks.

©

PLD.92.CI (H)

250–1984 (DSK.IV)

मूल्य : (देश में) रु० 42.00 या (विदेश में) £ 4.90 या $ 15.12

विक्रेता— (1) प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, भारत सरकार,
भारतीय विधि संस्थान भवन, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110 001।

(2) प्रकाशन-नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110 054।